मति-अनुसार बुध बेदहू बरनि।

नामरति-कामधेनु तुलसीको कामतरु,

रामनाम है बिसोह-तिमिर-तरनि॥ ४॥

भावार्थ—हे जीभ! राम-नामका जप कर, राम-नामके (तत्त्वको) जान और प्रेमपूर्वक उसमें विश्वास कर। एक राम-नामके जपसे तेरे हृदयके (तीनों) ताप शान्त हो जायँगे। राम-नामके परायण हो और राम-नामहीका कथन किया कर। (इस प्रकार नामकी शरणागति) कुटिल-कलियुगके पापों, दुःखों और संकटोंको हरनेवाली है॥ १॥ राम-नामके प्रभावसे गणेश (सर्वप्रथम) पूजे जाते हैं। गणेशजीने अपनी करनीको स्वयं कहा है, कुछ छिपाकर नहीं रखा। यह राम-नाम संसाररूपी समुद्रका पुल है (इसपर चढ़कर भक्तजन सहज ही भवसागरसे तर जाते हैं)। काशीमें भगवान् शंकर भी पार्वतीके सहित जीवोंको मोक्ष देनेके लिये राम-नामको जपा करते हैं॥ २॥ वाल्मीकि व्याधके अनन्त पाप थे, किन्तु उलटा नाम 'मरा-मरा' जपकर वे ऐसे हो गये कि मुनियों और देवताओंने भी उनकी पूजा की। अगस्त्य ऋषिने भी इसी रामनामके बलपर विन्ध्याचलपर्वतको रोक लिया एवं समुद्रको सुखा दिया था। पीछे वह समुद्र उन्हीं ब्राह्मण (अगस्त्य)-के भयसे हृदयमें हार मानकर खारा हो गया॥ ३॥ राम-नामकी अपार महिमा है। शेष, शुकदेव, वेद और पण्डितोंने बार-बार अपनी बुद्धिके अनुसार इसका वर्णन किया है। राम-नामसे प्रीति होना तुलसीदासके लिये कामधेनु और कल्पवृक्ष ही है (उसे तो इसी राम-नामसे मनचाहा दुर्लभ पद मिला है)। अधिक क्या, यह राम-नाम अज्ञानके अन्धकारको दूर करनेके लिये साक्षात् सूर्य है॥ ४॥

[२४८]

पाहि, पाहि राम! पाहि रामभद्र, रामचंद्र!

जब जब जग-जाल ब्याकुल करम काल,
सब खल भूप भये भूतल-भरन।
तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि
थापे मुनि, सुर, साधु, आस्रम, बरन॥ २॥
बेद, लोक, सब साखी, काहूकी रती न राखी,
रावनकी बंदि लागे अमर मरन।
ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ
रामराज भयो धरम चारिहु चरन॥ ३॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर,
ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन।
पील-उद्धरन! सीलसिंधु! ढील देखियतु
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन॥ ४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! हे कल्याणस्वरूप रघुनाथजी! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपका सुयश सुनकर शरण आया हूँ। हे दीनबन्धो! आप दीनता, दरिद्रता, सन्ताप, दोष, दारुण दुःख और असहनीय भय तथा पापोंका नाश करनेवाले हैं॥ १॥ जब-जब साधु (संत और गौ-ब्राह्मण) काल और कर्मके वश हो जगज्जालमें फँसकर व्याकुल हुए और सब दुष्ट राजा पृथ्वीपर भारस्वरूप हुए, तब-तब आपने अवतार-शरीर धारण कर (दुष्टोंका संहार कर) पृथ्वीका भार दूर कर दिया और मुनि, देवता, संत एवं वर्णाश्रम-धर्मकी पुनः स्थापना की॥ २॥ वेद और संसार दोनों ही इसके साक्षी हैं कि जब रावणने किसीकी भी प्रतिष्ठा नहीं रहने दी और देवतागण उसके कैदखानेमें पड़े-पड़े मरने लगे, तब हे भगवन्! आपहीने उन लोक-पतियोंको—इन्द्र, कुबेर आदिको आश्रय देकर शोकरहित किया और उन्हें फिरसे अपने-अपने लोकोंका स्वामी बनाया, और हे रामजी! आपके राज्यमें धर्म चारों चरणोंसे युक्त (धर्मराज्य) हो गया (सत्य, तप, दया और दान विकसित हो उठे)॥ ३॥ हे कृपालो! आपने लीलापूर्वक ही अहल्या, निषाद, जटायु, बंदर, भील, भालु और राक्षसोंको तरण-तारण कर दिया, (उन्हें तो तार ही

दिया, परन्तु दूसरोंको तारनेकी शक्ति भी उनको दे दी। जिस किसीने उनका संग या अनुकरण किया, वह भी तर गया।) हे गजराजके उद्धारक! हे शीलके सागर! इस तुलसीपर जो आपकी ओरसे कुछ ढील-सी दिखायी देती है, इससे वह मारे ग्लानिके गला चाहता है। अतएव कृपाकर इसका भी शीघ्र ही उद्धार कीजिये॥ ४॥

[२४९]

भली भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लौं जग,
जूड़े होत थोरे, थोरे ही गरम।
प्रीति न प्रबीन, नीतिहीन, रीतिके मलीन,
मायाधीन सब किये कालहू करम॥ १॥
दानव-दनुज बड़े महामूढ़ मूँड़ चढ़े,
जीते लोकनाथ नाथ! बलनि भरम।
रीझि-रीझि दिये बर, खीझि-खीझि घाले घर,
आपने निवाजेकी न काहूको सरम॥ २॥
सेवा-सावधान तू सुजान समरथ साँचो,
सदगुन-धाम राम! पावन परम।
सुरुख, सुमुख, एकरस, एकरूप, तोहि
बिदित बिसेषि घटघटके मरम॥ ३॥
तोसो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो-सो
दयामें बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माँह,
तुलसी बिकल, बलि, कलि-कुधरम॥ ४॥

भावार्थ—जगत्में जहाँतक मालिक हैं, उनको मैंने भलीभाँति समझ और पहचान लिया है। वे थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जाते हैं और थोड़ेमें ही गरम हो उठते हैं। न तो वे प्रेमके निभानेमें ही चतुर हैं और न नीति ही जानते हैं। उनकी चालें सब बुरी हैं, क्योंकि काल, कर्म और मायाने उन्हें अपने

अधीन कर रखा है॥ १॥ हे नाथ! (अपने) बलके भ्रमसे बड़े-बड़े दैत्य-दानव आदि महामूर्ख बनकर (सबके) सिरपर चढ़ गये थे और उन्होंने लोकपालोंको भी जीत लिया था। इन लोगोंको इनके मालिकोंने (देवताओंने) पहले तो (इनके तपपर) रीझ-रीझकर (मनमाने) वर दिये, पर पीछेसे नाराज हो-होकर इनके घरोंको स्वाहा करा दिया! (आपकी प्रार्थना करके) अपने सेवकोंको बिगाड़ते समय किसीको भी शर्म न आयी॥ २॥ हे रामजी! सावधान सेवकोंको तो आप ही भलीभाँति पहचानते हैं, क्योंकि आप ही सच्चे समर्थ, सद्‌गुणोंके स्थान और परमपवित्र हैं। आप सबपर कृपा करनेवाले, प्रसन्न-मुख, सदा एकरस और एकरूप हैं। आपको घट-घटका भेद विशेषरूपसे मालूम है॥ ३॥ हे कृपालो! आपके समान शरणागत कंगालोंको पालनेवाला दूसरा कोई नहीं है और मुझ-सरीखा कोई कंगाल नहीं है। हे देव! सारे धर्मोंका निवास दयामें ही है (अत: मुझ दीनपर दया कर दीजिये)। फिर हे नाथ! आप तो कल्पवृक्ष हैं। इसी कल्पवृक्षकी छायामें रहना चाहता हूँ। बलिहारी! यह तुलसी कलियुगके कुटिल धर्मोंसे बड़ा ही व्याकुल हो रहा है। (कृपाकर इसे शीघ्र ही बचाइये॥ ४॥

[२५०]

तौ हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न,
जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु।
आलसी-अभागे मोसे तैं कृपालु पाले-पोसे,
राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु॥ १॥
सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस, गौरी,
हित कै न माने बिधि हरिउ न हरु।
रामनाम ही सों जोग-छेम, नेम, प्रेम-पन,
सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु॥ २॥
समाचार साथके अनाथ-नाथ! कासों कहौं,
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु।

निज काज, सुरकाज, आरतके काज, राज!
बूझिये बिलंब कहा कहूँ न गहरु॥ ३॥
रीति सुनि रावरी प्रतीति-प्रीति रावरे सों,
डरत हौं देखि कलिकालको कहरु।
कहेही बनैगी कै कहाये, बलि जाउँ, राम,
'तुलसी! तू मेरो, हारि हिये न हहरु'॥ ४॥

भावार्थ—हे नाथ! यदि मुझे कहीं कोई दूसरा स्वामी या (आश्रयके लिये) स्थान मिल जाता, तो मैं बार-बार आपको पुकारकर अप्रसन्न न करता। हे महाराज रामचन्द्रजी! मुझ-सरीखे आलसियों और अभागोंको तो आपने ही पाला-पोसा है। अतएव हे कृपालो! आप ही मेरे राजा हैं और अयोध्या ही मेरे (रहनेके) लिये शहर है॥ १॥ न तो मैंने दिक्पाल, सूर्य, गणेश और पार्वतीहीकी प्रेमपूर्वक सेवा की है और न (श्रद्धासहित) ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी ही उपासना की है। मेरा तो योग-क्षेम एक राम-नामसे ही है। (राम-नामसे ही मुझे तो अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्त साधनकी रक्षा हुई है) उसीसे मेरा नेम है, उसीसे प्रेम है और उसीमें अनन्यता है। उसका भरोसा मेरे लिये अमृतके समान है और दूसरे सब साधन विषके समान हैं॥ २॥ हे अनाथोंके नाथ! मेरे साथी चोर और चौकीदार सब आपहीके हाथमें हैं, इससे उनकी बात और किससे कहूँ। (आप काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोरोंको भगाकर विवेक-वैराग्यरूपी चौकीदारोंको सचेत कर देंगे तो मेरा राम-नाम-प्रेमरूपी धन बच जायगा।) हे महाराज! जरा विचारिये, आपने अपने कामोंमें, देवताओंके कामोंमें और दीन-दुःखियोंके कामोंमें क्या कभी देर की है? फिर मेरे ही लिये क्यों इतना विलम्ब हो रहा है?॥ ३॥ आपकी रीति (पतित-पावनता, शरणागत-वत्सलता आदि) सुनकर मुझे आपपर विश्वास और प्रेम हो गया है, किन्तु कलियुगकी अनीति देखकर मैं डरता हूँ (कि कहीं वह मुझे आपसे विमुखकर विषयोंमें न फँसा दे)। हे रघुनाथजी! मैं आपकी बलैया लेता हूँ; मेरी तो आपके इतना कहनेसे या किसीके द्वारा कहलानेसे ही बनेगी कि 'हे तुलसी! तू मेरा है, निराश होकर हृदयमें मत घबरा'॥ ४॥

[२५१]

राम! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर, हनुमान, लखन, भरत।
जिन्हके हिये-सुथरु राम-प्रेम-सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत॥ १॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाइ भाइ, पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत।
साहिब-सेवक-रीति, प्रीति-परिमिति, नीति,
नेमको निबाह एक टेक न टरत॥ २॥
सुक-सनकादि, प्रहलाद-नारदादि कहैं,
रामकी भगति बड़ी बिरति-निरत।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ! पगनि परत॥ ३॥
छ-मत बिमत, न पुरान मत, एक मत,
नेति-नेति-नेति नित निगम करत।
औरनिकी कहा चली? एकै बात भलै भली,
राम-नाम लिये तुलसी हू से तरत॥ ४॥

भावार्थ—हे रामजी! आपके स्वभाव, गुण, शीलकी महिमा और प्रभावको श्रीशिवजी, हनूमान्‌जी, लक्ष्मणजी और भरतजीने ही (तत्त्वसे) जाना है, (इसीसे) उनके हृदयरूपी सुन्दर थामलेमें आपके प्रेमका कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहा है, जिसमें परम सुखरूपी सरस फूल-फल फूलते और फलते हैं। (जो भगवान्‌के गुण-शीलकी महिमा जान लेता है, उसका हृदय भगवत्प्रेमसे ही भर जाता है; और जिस हृदयमें भगवत्प्रेम भरा है, उसीमें परमानन्द निवास करता है)॥ १॥ आप अपने स्वभावके वश होकर शिवजीको स्वामी, हनूमान्‌जीको मित्र और लक्ष्मण तथा भरतको अपना भाई मानते हैं और वे सब आपको अपना मालिक मानते हैं, प्रेममें सदा सावधान

रहते हैं और डरा करते हैं (कि कहीं प्रेमकी अनन्यता और विशुद्धतामें कमी न आ जाय)। यदि स्वामी और सेवक दोनों इस रीतिसे प्रेम करते रहें और (प्रेमके) नीति-नियमोंको सदा निबाहते रहें तो उनके (प्रेमकी) टेक कभी टल नहीं सकती और वह सीमाको पहुँच जाती है॥ २॥ शुकदेव, सनकादि, प्रह्लाद और नारद आदि भक्तगण कहते हैं कि परमविरक्त होनेसे ही श्रीरघुनाथजीकी महान् (अनन्य विशुद्ध) भक्ति मिलती है। (भोगोंसे परम वैराग्य उसीको प्राप्त होता है जो भगवान्‌को तत्त्वसे जान लेता है, अतएव परमात्माके) ज्ञान बिना भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती; किन्तु वह ज्ञान, हे नाथ! आपके हाथमें है (ज्ञान किसी साधनसे नहीं होता, यह तो भगवत्कृपासे प्राप्त होता है), इसी बातको समझकर चतुर लोग आपके चरणोंपर आकर गिरते हैं (सारे साधनोंको छोड़कर आपकी शरणमें आते हैं)॥ ३॥ छः शास्त्रोंके मत भिन्न-भिन्न हैं, पुराणोंका भी मत एक-सा नहीं है और वेद भी नित्य 'नेति-नेति' करते रहते हैं। फिर औरोंके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है? (इस अवस्थामें आपकी शरणागतिको छोड़कर आपको तत्त्वसे जाननेके लिये और उपाय ही क्या है?)। (इसलिये) मुझे तो बस, एक श्रीराम-नामका आश्रय लेना, यही बात अच्छी जान पड़ती है और इसीसे कल्याण हो सकता है, क्योंकि इससे तुलसीदास-सरीखे भी (संसार-सागरसे) तर गये हैं॥ ४॥

[२५२]

बाप! आपने करत मेरी घनी घटि गई।

लालची लबारकी सुधारिये बारक, बलि,
रावरी भलाई सबहीकी भली भई॥ १॥
रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मनु,
पर-अपबाद मिथ्या-बाद बानी हई।
साधनकी ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि
बिगरी बनावै कृपानिधिकी कृपा नई॥ २॥
पतित-पावन, हित आरत-अनाथनिको,
निराधारको अधार, दीनबंधु, दई।

इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो,
ताहिते त्रिताप-तयो, लुनियत बई॥ ३॥
स्वाँग सूधो साधुको, कुचालि कलितें अधिक,
परलोक फीकी मति, लोक-रंग-रई।
बड़े कुसमाज राज! आजुलौं जो पाये दिन,
महाराज! केहू भाँति नाम-ओट लई॥ ४॥
राम! नामको प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसीकी निलजई॥ ५॥

भावार्थ—हे मेरे बापजी! मैंने अपने ही हाथों अपनी करनी बहुत ही बिगाड़ डाली है, आपकी बलैया लेता हूँ, इस लोभी और झूठेकी बात एक बार तो सुधार दीजिये। क्योंकि जिस-जिसके साथ आपने भलाई की, उसीकी बात बन गयी (दया करके आज मेरी भी बिगड़ी बना दीजिये)॥ १॥ शरीर रोगी है, मन बुरी-बुरी कामनाओंसे मलिन हो रहा है और वाणी दूसरोंकी निन्दा करते और झूठ बोलते-बोलते नष्ट हो गयी है; (जिस तन-मन-वचनसे साधन होते हैं, वे तीनों ही साधनके योग्य नहीं रहे, परन्तु) साधनोंका यह नियम है कि बिना साधे वे सिद्ध नहीं होते। इससे (अब तो) हे कृपानिधे! आपकी एक कृपा ही ऐसी अनूठी है, जो मेरी बिगड़ी बातको बना देगी। (आपकी कृपासे ही मुझ साधनहीनका सुधार हो सकता है)॥ २॥ आप पापियोंको पवित्र करनेवाले, दुःखियों और अनाथोंके हितू, निराधारोंके आधार, दीनोंके बन्धु और (स्वाभाविक ही) दयालु हैं। किन्तु, मैं तो इनमेंसे एक भी नहीं हूँ (अहंकारके मारे मैंने अपनेको कभी पतित, दुःखी, दीन, अनाथ और निराधार माना ही नहीं। तब फिर आप इनके नाते मुझपर क्यों कृपा करेंगे?)। न तो मैंने विवेकसे अपने शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह)-के ही साथ युद्ध किया और न उनपर विजय ही प्राप्त की। इसीसे मैं दैहिक, भौतिक, और दैविक इन तीनों तापोंसे जल रहा हूँ; जैसा बोया वैसा ही काट रहा हूँ (किसे दोष दूँ?)॥ ३॥ मेरा स्वाँग तो सीधे-सादे साधुका-सा है, पर पाप

करनेमें मैं कलियुगसे भी बढ़ा हुआ हूँ। मेरी बुद्धिको परलोककी (भगवत्सम्बन्धी) बातें फीकी लगती हैं और वह संसारके रंगमें रँगी हुई है (वह केवल विषय-भोगोंके पाने-न-पानेकी उलझनमें फँसी रहती है)। हे महाराज! इस बड़े भारी दुष्ट-समाजके साथ आजतक जितने दिन बीते सो तो व्यर्थ चले ही गये, अब किसी-न-किसी तरह आपके नामका सहारा लिया है॥ ४॥ हे श्रीरामजी! आप भलीभाँति जानते हैं कि आपके नामका कैसा प्रताप है! (न मालूम मुझ-सरीखे कितने नामके प्रतापसे तर चुके हैं)। मेरे लिये तो सिवा आपके नामके विधाताने दूसरी गति ही नहीं रची है। आपको असन्तुष्ट करनेके लायक मेरे करोड़ों कुकर्म हैं, किन्तु सन्तुष्ट करनेके लायक तो मेरी एक निर्लज्जता ही है। (मेरी निर्लज्जतापर ही प्रसन्न होकर कृपा कीजिये)॥ ५॥

[२५३]

राम ! राखिये सरन, राखि आये सब दिन।
बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो,
आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन॥ १॥
लाले पाले, पोषे तोषे आलसी-अभागी-अघी,
नाथ! पै अनाथनिसों भये न उरिन।
स्वामी समरथ ऐसो, हौं तिहारो जैसो-तैसो
काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन॥ २॥
खीझि-रीझि, बिहँसि-अनख, क्यों हूँ एक बार
'तुलसी तू मेरो', बलि, कहियत किन?
जाहिं सूल निरमूल, होहिं सुख अनुकूल,
महाराज राम! रावरी सौं, तेहि छिन॥ ३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! मुझे अपने ही शरणमें रखिये, क्योंकि (मुझ-सरीखोंको) सदासे आप ही अपनाते आये हैं। यह सभी जानते हैं कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें आपके समान दयालु दूसरा कोई नहीं है। हे नाथ! आर्त शरणागतोंकी रक्षा करनेवाला आपके सिवा दूसरा कौन है?॥ १॥ आपने ही आलसी, अभागे और पापी लोगोंका लालन-पालन किया, उन्हें

पाला-पोसा और प्रसन्न रखा; तिसपर भी हे नाथ! आप उनसे कभी उऋण नहीं हुए। हे स्वामी! आप तो समर्थ हैं; पर मैं (भला-बुरा) जैसा कुछ हूँ, आपहीका हूँ। कलिकालकी चालें देखकर मेरे हृदयमें बड़ी घिन हो रही है (यह शंका है कि कहीं यह दुष्ट आपके चरणोंकी ओरसे मेरे मनको फेर न दे।)॥ २॥ बलिहारी! एक बार नाराजीसे अथवा राजीसे, मुसकराकर या अनखाकर किसी भी तरह इतना क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी! तू मेरा है' इतना कह देनेमात्रसे ही, हे महाराज रामचन्द्रजी! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ, उसी क्षण मेरा सारा दुःख जड़से नष्ट हो जायगा और समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायँगे॥ ३॥

[२५४]

राम! रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन-सनेही, गुरु-साहिब, सखा-सुहृद,
राम-नाम प्रेम-पन अबिचल बितु है॥ १॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है।
नामको भरोसो-बल चारिहू फलको फल,
सुमिरिये छाड़ि छल, भलो कृतु है॥ २॥
स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम,
राम-नाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाव कही, साँचिये परैगी सही,
सीतानाथ-नाम नित चितहूको चितु है॥ ३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आपका नाम ही मेरा माता-पिता, स्वजन-सम्बन्धी, प्रेमी, गुरु, स्वामी, मित्र और अहैतुक हितकारी है। और आपके नामसे जो मेरा अनन्य प्रेम है, वही मेरा अटल धन है॥ १॥ शिवजीने सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि-सागरको मथकर उससे राम-नामरूपी घी निकाला है। आपके नामका बल-भरोसा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फलोंका (चरम) फल है। कपटभाव छोड़कर इसीका स्मरण करना चाहिये।

यही सर्वोत्तम यज्ञ* है॥ २॥ आपका नाम सभी सांसारिक स्वार्थोंका साधनेवाला एवं परमार्थ (मोक्ष)-का प्रदान करनेवाला है। श्रीरामनामके समान हित करनेवाला और कोई भी नहीं है। यह बात तुलसीने स्वभावसे ही कही है, अतएव सचमुच ही इसपर सही पड़ेगी। जानकीरमण श्रीरामका नाम चित्तका भी चित् है॥ ३॥

[२५५]

राम! रावरो नाम साधु-सुरतरु है।
सुमिरे त्रिबिध घाम† हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिजको सरु है॥ १॥
लाभहूको लाभ, सुखहूको सुख, सरबस,
पतित-पावन, डरहूको डरु है।
नीचेहूको ऊँचेहूको, रंकहूको रावहूको
सुलभ, सुखद आपनो-सो घरु है॥ २॥
बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,
नाम-प्रेम चारिफलहूको फरु है।
ऐसे राम-नाम सों न प्रीति, न प्रतीति मन,
मेरे जान, जानिबो सोई नर खरु है॥ ३॥
नाम-सो न मातु-पितु, मीत-हित, बंधु-गुरु,
साहिब सुधी सुसील सुधाकरु है।
नामसों निबाह नेहु, दीनको दयालु! देहु,
दासतुलसीको, बलि, बड़ो बरु है॥ ४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! साधुओंके लिये तो आपका नाम कल्पवृक्ष है। क्योंकि स्मरण करते ही वह तीनों (दैहिक, भौतिक और दैविक) तापोंको

* गीतामें तो श्रीभगवान्‌ने जप-यज्ञको अपना स्वरूप ही बतलाया है—यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।

† घाम=घर्म=ताप। अनेक प्रतियोंमें 'धाम' पाठ है। परन्तु धामका अर्थ केवल 'ज्योति' है, 'ताप' कदापि नहीं। पाठान्तरकी तरह भी 'धाम' स्वीकार्य नहीं है।

हर लेता है और सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है, मनुष्यको पूर्णकाम बना देता है। (वह आपका नाम) समस्त पुण्यरूपी कमलोंका सरोवर है (राम-नामका आश्रय लेनेवालेको सभी पुण्योंका फल मिल जाता है)॥ १॥ वह लाभका भी लाभ, सुखका भी सुख है और (भक्तोंका) सर्वस्व है। (उससे बढ़कर संतोंका कोई लाभ, सुख या धन नहीं है) वह पतितोंको पावन करनेवाला और (सबको डरानेवाले यमदूतरूपी महा) भयको भी भयभीत करनेवाला है। वह नीच-ऊँच और राव-रंक, सभीके लिये सुलभ है (सभी उसका जप कर सकते हैं)। सभीको सुख देनेवाला है और अपने निजी घरके समान आराम देनेवाला है॥ २॥ वेदोंने, पुराणोंने और शिवजीने भी पुकार-पुकारकर कहा है कि राम-नाममें प्रेम होना ही चारों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) फलोंका फल है। ऐसे श्रीराम-नामपर जिसके मनमें प्रेम और विश्वास नहीं है, मेरी समझमें उस मनुष्यको गधा समझना चाहिये (वह गधेके समान जीवनमें मनुष्यत्वके अहंकारका भार ही ढोता है)॥ ३॥ पिता-माता, मित्र-हितू, भाई, गुरु और मालिक इनमेंसे कोई भी श्रीराम-नामके समान नहीं है। वह परम सुशील सुधाकर (चन्द्रमा)-के समान बुद्धिमान् स्वामी है। (शरण लेते ही समस्त ताप हर लेता है और मोक्षरूप अमृत पान कराकर सदाके लिये सुखी कर देता है)। हे दयालु! मैं बलैया लेता हूँ, इस तुलसीदासको वही महान् बल दीजिये, जिससे आपके नामके साथ इस दीनका प्रेम सदा निभ जाय॥ ४॥

[२५६]

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम! रस न रहत।

तुमसे सुसाहिबकी ओट जन खोटो-खरो
कालकी, करमकी कुसाँसति सहत॥ १॥
करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ ते लहत?
नाथकी महिमा सुनि, समुझि आपनी ओर,
हेरि हारि कै हहरि हदय दहत॥ २॥

सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु आप,
माय-बाप तुही साँचो तुलसी कहत।
मेरी तौ थोरी है, सुधरैगी बिगरियौ, बलि,
राम! रावरी सौं, रही रावरी चहत॥ ३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! कहे बिना तो रहा नहीं जाता और कह देनेपर कुछ रस (मजा) नहीं रह जाता। (बात यह है कि) आप-सरीखे श्रेष्ठ स्वामीका आश्रय पाकर भी मैं आपका बुरा या भला सेवक काल और कर्मके कारण असह्य दुःख भोग रहा हूँ॥ १॥ (व्याध-निषाद आदिके बड़प्पनपर) विचार करता हूँ, पर कहीं कुछ भी रहस्य नहीं मिलता कि इन सब लोगोंने कहाँसे बड़प्पन प्राप्त किया? (सुना जाता है, आपने ही इनको दीन जानकर अपना लिया, जिससे ये सब महान् पूज्य हो गये) आपकी (ऐसी) महिमा सुन-समझकर जब अपनी दशाकी ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ और घबराहटसे हृदय जलने लगता है (दीन और पतितोंको तारनेवाले होकर भी मुझ शरणागत दीनको अबतक क्यों नहीं अपनाया? यही सोचकर हृदयमें जलन होने लगती है और इसीसे मनमानी बातें कह बैठता हूँ)॥ २॥ (और कहूँ भी किससे, क्योंकि) न तो मेरा कोई मित्र है, न सच्चा सेवक है, न सुलक्षणा स्त्री है और न कोई नाथ है। मेरे तो माँ-बाप आप ही हैं, तुलसी यह सच्ची बात कह रहा है। मेरी तो थोड़ी-सी बात है, बिगड़ी होनेपर भी सुधर जायगी; किन्तु, बलिहारी! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ मैं तो आपकी बात ही रखना चाहता हूँ (कहीं आपका पतितपावन और शरणागतवत्सल बाना न लज जाय)॥ ३॥

[२५७]

दीनबंधु! दूरि किये दीनको न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब, आपनेको कोऊ कहूँ,
सबको भलो है राम! रावरो चरन॥ १॥
पाहन, पसु, पतंग, कोल, भील, निसिचर
काँच ते कृपानिधान किये सुबरन।

दंडक-पुहुमि पाय परसि पुनीत भई,
उकठे बिटप लागे फूलन-फरन॥ २॥
पतित-पावन नाम बाम हू दाहिनो, देव!
दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन।
सीलसिंधु! तोसों ऊँची-नीचियौ कहत सोभा,
तोसो तुही तुलसीको आरति-हरन॥ ३॥

भावार्थ—हे दीनबन्धो! यदि आपने इस दीनको (अपनी शरणसे) हटा दिया तो फिर इसे और कहीं शरण न मिलेगी। क्योंकि अपनी भलाई चाहनेवाले तो प्राय: सभी हैं, किन्तु अपने दासोंका भला करनेवाला कोई विरला ही है। हे श्रीरामजी! सबका भला करनेवाले तो आपके चरण ही हैं, (आपके चरणोंके आश्रयसे भले-बुरे सभीका कल्याण होता है)॥ १॥ पत्थरकी शिला (अहल्या), पशु (बंदर, रीछ), पक्षी (जटायु), कोल-भील, राक्षस (विभीषण) आदिको हे कृपानिधान! आपने काँचसे सोना बना दिया (विषयी थे जिनको मुक्त कर दिया)। दण्डकवनकी भूमि आपके चरणोंका स्पर्श होते ही पवित्र हो गयी और उखड़े हुए सूखे पेड़ फिर फूलने-फलने लगे॥ २॥ आपका पतित-पावन नाम जो आपसे विमुख हैं उनका भी कल्याण करता है (शत्रुभावसे भजनेवाले भी तर जाते हैं)। हे देव! संसारमें असह्य दु:खों और पापोंका नाश करनेवाला आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। आप शीलके समुद्र हैं, अतएव आपसे नीची-ऊँची बात कहनेमें भी शोभा ही है (अधिक क्या कहूँ)। तुलसीके दु:ख दूर करनेवाले तो बस आप-सरीखे एक आप ही हैं (इसीसे शरण पड़ा हूँ)॥ ३॥

[२५८]

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान!
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन,
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं॥ १॥

मोसो दोस-कोसको भुवन-कोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं।
गाड़ीके स्वानकी नाईं, माया मोहकी बड़ाई
छिनहिं तजत, छिन भजत बहोरि हौं॥ २॥
बड़ो साईं-द्रोही न बराबरी मेरीको कोऊ,
नाथकी सपथ किये कहत करोरि हौं।
दूरि कीजै द्वारतें लबार लालची प्रपंची,
सुधा-सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं॥ ३॥
राखिये नीके सुधारि, नीचको डारिये मारि,
दुहूँ ओरकी बिचारि, अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढील किये नाम-महिमाकी नाव बोरिहौं॥ ४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान! मैंने जान-पहचानकर भी आपको भुला दिया है और घमंडके मारे इतना ढीठ हो गया हूँ कि उलटा आपहीपर दोष मढ़ता हूँ (कि आप शीलसिन्धु होकर भी मुझे अपनाते नहीं हैं)। जिससे प्रीति जोड़नेके लिये बड़े-बड़े योगी यत्न किया करते हैं, उससे ज्यों-त्यों करके कुछ प्रीति जुड़ गयी थी, पर मैं अभागा उसे भी तोड़ बैठा॥ १॥ मुझ-सरीखा पापोंका खजाना चौदहों लोकोंमें दूसरा नहीं है, अपनी समझमें मैं खूब ढूँढ़ चुका हूँ। जैसे गाड़ीके पीछे लगा हुआ कुत्ता कभी तो गाड़ीको छोड़कर इधर-उधर भाग जाता है और कभी फिर उसके साथ हो लेता है, वैसे ही मैं क्षणभरमें तो माया-मोहके बड़प्पनको छोड़ बैठता हूँ और दूसरे ही क्षण फिर उसीमें रम जाता हूँ॥ २॥ मैं आपकी करोड़ों शपथ खाकर कह रहा हूँ कि स्वामीके साथ द्रोह करनेवाला मेरी बराबरीका दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिये मुझ झूठे, लालची और ठगको दरवाजेसे हटा दीजिये, नहीं तो मैं अमृत-सरीखा जल शूकरीकी तरह गँदला कर डालूँगा (आपका भक्त कहाकर बुरे कर्म करूँगा तो आपके निर्मल यशमें कलंक लग जायगा)॥ ३॥ (अतएव) या तो मुझे अच्छी तरह सुधारकर (अपनी शरणमें) रख लीजिये, नहीं तो मुझ नीचको मार ही डालिये।

बस, अब आप ही इन दोनों बातोंपर विचार कर लीजिये, अब मैं आपका निहोरा न करूँगा। तुलसीने बार-बार लकीर खींचकर सच्ची बात कह दी है। यदि आप भी देरी करेंगे, तो मैं आपके नामकी महिमारूपी नौकाको डुबा दूँगा। (मेरी दुर्दशा देखकर लोग आपके नामका विश्वास छोड़ देंगे)॥ ४॥

[२५९]

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि, बेदकी न, लोक कहा कहैगो?
प्रभुको उदास-भाउ, जनको पाप-प्रभाउ,
दुहूँ भाँति दीनबन्धु! दीन दुख दहैगो॥ १॥
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत, परबस को न सहैगो?
बाँकी बिरुदावली बनैगी पाले ही कृपालु!
अंत मेरो हाल हेरि यौं न मन रहैगो॥ २॥
करमी-धरमी, साधु-सेवक, बिरत-रत,
आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो?
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर-कपूत-कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो?॥ ३॥
काल पाय फिरत दसा दयालु! सबहीकी,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो।
बचन-करम-हिये कहौं राम! सौंह किये,
तुलसी पै नाथके निबाहेई निबहैगो॥ ४॥

भावार्थ—यदि आपकी सुधारी हुई मेरी बात मेरे बिगाड़नेसे बिगड़ जायगी तो, मैं तुम्हारी बलैया लेता हूँ, फिर वेदकी तो जाने दीजिये, संसार क्या कहेगा? (वेदमें कुछ भी लिखा हो, संसार तो यही कहेगा कि तुलसी ही ईश्वर है, क्योंकि उसने रामजीकी बनायी बातको बिगाड़ दिया।) प्रभुकी उदासीनता और मुझ दासके पापोंका प्रभाव, यदि ये दोनों मिल गये तो हे दीनबन्धो! यह दीन दुःखके मारे जल मरेगा। (मैं तो महापापी हूँ ही पर

आप भी उदासीन हो जायँगे मेरी बड़ी ही बुरी गति होगी) ॥ १ ॥ मैंने तो अपनी छातीपर वज्र रख लिया है (दुःख सहनेके लिये तैयार हूँ, परन्तु पाप नहीं छोड़ता) क्योंकि कलियुगने मुझे दबा रखा है। इसीसे कष्ट सह रहा हूँ। (मैं ही क्यों) जो भी परतन्त्र होगा, उसे कष्ट सहने ही पड़ेंगे। किन्तु हे कृपालु! आपको तो अपनी बाँकी विरदावलीके वश होकर मेरी रक्षा करनी ही पड़ेगी। (अभी न सही,) अन्त समय तो मेरा (बुरा) हाल देखकर आपका यह उदासीन भाव रह नहीं सकता (दयालु स्वभावसे मेरा दुःख देखा ही नहीं जायगा, तब दौड़कर बचाना होगा) ॥ २ ॥ कर्मकाण्डी, धर्मात्मा, साधु, सेवक, विरक्त और विषयी जीव ये सब तो अपने-अपने भले कर्मोंके अनुसार कहीं कोई-सा स्थान पा ही जायँगे, परन्तु आपके मुँह फेर लेनेसे (उदासीन हो जानेसे) मुझ-सरीखे कायर, कुपूत, क्रूर, साधनहीन और पतित जीवोंको कौन आश्रय देगा (कोई भी नहीं) ॥ ३ ॥ हे दयालो! काल पाकर सभीकी दशा पलटती है, सभीके दिन फिरते हैं, परन्तु आपको छोड़कर मुझे तो कभी कोई नहीं चाहेगा (आपके आश्रयको छोड़कर मुझे कहीं कोई स्थान नहीं मिलनेका)। हे श्रीरामजी! आपकी शपथ खाकर वचन, कर्म और मनसे कहता हूँ कि यह तुलसी तो नाथके ही निबाहे निभेगा ॥ ४ ॥

[२६०]

साहिब उदास भये दास खास खीस होत
मेरी कहा चली? हौं बजाय जाय रह्यो हौं।
लोकमें न ठाउँ, परलोकको भरोसो कौन?
हौं तो, बलि जाउँ, रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥ १ ॥
करम, सुभाउ, काल, काम, कोह, लोभ, मोह-
ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं।
छोरिबेको महाराज, बाँधिबेको कोटि भट,
पाहि प्रभु! पाहि, तिहुँ ताप-पाप दह्यो हौं ॥ २ ॥
रीझि-बूझि सबकी प्रतीति-प्रीति एही द्वार,
दूधको जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।

रटत-रटत लट्यो, जाति-पाँति-भाँति घट्यो,
जूठनिको लालची चहौं न दूध-नह्यो हौं॥ ३॥
अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार,
अपनो सो नाथ हू सों कहि निरबह्यो हौं॥ ४॥

भावार्थ—जब मालिक उदासीन हो जाता है तब खास नौकर भी बरबाद हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? मैं तो डंकेकी चोट दु:खोंमें बहा चला जा रहा हूँ। जब मेरे लिये इस लोकमें ही कहीं ठौर नहीं है, तब परलोकका क्या भरोसा करूँ? हे श्रीरामजी! मैं आपकी बलैया लेता हूँ, मैं तो एक आपके नामहीके हाथ बिक चुका हूँ (मेरा लोक-परलोक तो उसीसे बनेगा)॥ १॥ कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी बड़े-बड़े ग्राहोंने और (साधनहीनतारूपी) घोर दरिद्रताने मुझको बड़े जोरसे पकड़ रखा है। हे महाराज! बाँधनेके लिये करोड़ों योद्धा हैं, परन्तु बन्धनसे छुड़ानेके लिये तो केवल एक आप ही हैं। अतएव हे प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मैं पापरूपी तीनों तापोंसे जल रहा हूँ (अपनी कृपादृष्टिकी सुधावृष्टिसे इन तापोंको शान्त कीजिये)॥ २॥ हे प्रभो! (दूसरे किसके पास जाऊँ?) सबकी रीझ-बूझ और प्रीति-विश्वास एक आपके ही द्वारपर है। (आपके ही दिये हुए अधिकारसे देवतागण आपके ही खजानेसे अपने सेवकोंको कुछ दिया करते हैं, परन्तु वे मुक्ति नहीं दे सकते। उन सबकी पूजा भी आपकी ही पूजा होती है, क्योंकि सबके मूल आप ही हैं।) मैं तो दूधका जला मट्ठा भी फूँक-फूँककर पीता हूँ। भाव यह कि आपको छोड़कर दूसरोंको भजनेसे कभी परमसुख और दिव्य शान्ति नहीं मिली, इसलिये बहुत सावधान होकर चलता हूँ। सुखके लिये देवताओंको पुकारते-पुकारते हार गया और जाति-पाँति तथा चाल-चलन सभीसे हाथ धो बैठा। इसलिये अब मैं केवल आपके जूठनका ही लालची हूँ। मैं दूधसे नहीं नहाना चाहता। भाव, मुझे स्वर्गके ऐश्वर्यकी इच्छा नहीं है, मैं तो केवल आपके चरणोंमें पड़े रहना चाहता हूँ॥ ३॥ मैं और कहीं (दूसरोंकी शरण

लेकर) सुखमार्गपर अच्छी चाल चलकर अपना कल्याण नहीं चाहता हूँ और यहाँ (आपके शरणमें) मैं आदर न पाकर भी अच्छी तरह हूँ। (आपके अनोखे विरदके भरोसे निर्भय और निश्चिन्त पड़ा हूँ)। तुलसीने समझकर अपने मनको बार-बार समझा दिया है और वह अपने नाथसे भी कहकर निश्चिन्त हो गया है कि उसका निर्वाह आपके ही हाथमें है॥ ४॥

[२६१]

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं
राम! रावरे बनाये बनै पल पाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
लिये बेर बदलि अमोल मनि आउ मैं॥ १॥
मानस मलीन, करतब कलिमल पीन
जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलिहू भलो,
बाल-दसा हू न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं॥ २॥
देखा-देखी दंभ तें कि संग तें भई भलाई,
प्रकटि जनाई, कियो दुरित-दुराउ मैं।
राग रोष दोष/द्वेष पोषे, गोगन समेत मन
इनकी भगति कीन्ही इनही को भाउ मैं॥ ३॥
आगिली-पाछिली, अबहूँकी अनुमान ही तें
बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं।
जग कहै रामकी प्रतीति-प्रीति तुलसी हू,
झूठे-साँचे आसरो साहब रघुराउ मैं॥ ४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! मेरी सद्‌गति मेरे बनाये (साधनोंके द्वारा) तो करोड़ों कल्पतक भी न होगी; परन्तु आप करना चाहें तो पाव पलमें ही हो सकती है। हे कृपानिधान! मैं क्या कहूँ, आप तो स्वयं परम चतुर हैं; मैंने अनमोल मणिके समान आयुके बदलेमें (विषयरूप) बेर ले लिये।

(जिस मनुष्य-जीवनको आपकी प्राप्तिमें लगाना चाहिये था उसे विषयोंमें लगाकर व्यर्थ खो दिया)॥ १॥ (जिससे मेरा) मन मलिन हो गया तथा कलियुगके कारण (कु) कर्म और भी पुष्ट हो गये, नित्य नये पाप बढ़ते गये। जीभसे भी आपका नाम नहीं जपा, सदा आयँ-बायँ ही बकता रहा। बुरे-बुरे मार्गोंपर कुचालें ही चलता रहा। भूलकर भी मुझसे कभी किसीका भला नहीं हुआ। अरे! बचपनमें खेलते समय भी कभी अच्छा दाँव हाथ नहीं लगा (भगवत्सम्बन्धी खेल नहीं खेला)॥ २॥ हाँ, किसीकी देखा-देखी (भक्तिका स्वाँग दिखलानेके लिये) दम्भसे या सत्संगके प्रभावसे कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उसे ढिंढोरा पीटता हुआ कहता फिरा, और (मनसे चाह-चाहकर) जो पाप किये उन्हें छिपाता रहा। राग, द्वेष और क्रोधको तथा इन्द्रियोंसमेत मनको सदा पालता-पोषता रहा। सदा राग, द्वेष और क्रोधके तथा मन-इन्द्रियोंके ही वशमें रहा। इन्हींकी भक्ति की और इन्हींसे प्रेम किया॥ ३॥ मैंने अपनी बीती हुई, वर्तमान तथा भविष्यकी दशाका अनुमान करके यह समझ लिया है कि मैंने कभी कोई भला काम नहीं किया। किन्तु संसार कह रहा है कि—'तुलसी रामजीका है' और मुझे भी आपपर विश्वास और प्रेम है। अब चाहे झूठ हो या सच, हे स्वामी श्रीरघुनाथजी! मैं तो आपके ही आसरे पड़ा हूँ॥ ४॥

[२६२]

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता।
प्रभुकी बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभुकी पुनीतता, आपनी पाप-पीनता॥ १॥
दुहू ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी-समीचीनता।
नाथ-गुनगाथ गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति-रीतिकी प्रबीनता॥ २॥
एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,
लाभ जोग-छेमको गरीबी-मिसकीनता।

मोटो दसकंध सो न दूबरो बिभीषण सो,
बूझि परी रावरेकी प्रेम-पराधीनता॥ ३॥
यहाँकी सयानप, अयानप सहस सम,
सूधौ सतभाय कहे मिटति मलीनता।
गीध-सिला-सबरीकी सुधि सब दिन किये
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता॥ ४॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता।
करुनानिधान! बरदान तुलसी चहत,
सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता ॥ ५॥

भावार्थ—हे नाथ! कुछ कहा भी नहीं जाता और कहे बिना रहा भी नहीं जाता। आपकी बलैया लेता हूँ (यद्यपि) बड़ोंके सामने अपनी गरीबी सुनानेमें बहुत सुख मिलता है। (तथापि कहाँ तो) प्रभुका महान् बड़प्पन और कहाँ मेरी छोटी-सी क्षुद्रता; कहाँ तो प्रभुकी पवित्रता और कहाँ मेरे पापोंकी अधिकता॥ १॥ इन दोनों ओरकी बातोंपर विचार करके मन संकोचके मारे सहम जाता है (कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं होती, पैर पीछे पड़ने लगते हैं), परन्तु स्वामीकी सुन्दर साधुता (शरणागत कैसा भी दीन-हीन-मलिन हो, आप उसको आदरके साथ अपना ही लेते हैं)-को सुनकर यह मन फिर सम्मुख जाता है। हे नाथ! आपके गुणोंकी गाथाओंको गानेसे और हाथ जोड़कर मस्तक नवानेसे आपने नीचोंको भी निहाल कर दिया है (यह आपके प्रेमकी रीतिकी चतुरता है)॥ २॥ इस दरबारमें गर्वसे सर्वनाश हो जाता है और गरीबी एवं नम्रतासे ही योगक्षेमकी प्राप्ति होती है। रावण-सरीखा तो कोई प्रतापी नहीं था, और विभीषणके समान कोई दीन-दुर्बल नहीं था। परन्तु इस प्रसंगमें आपकी प्रेमकी पराधीनता ही (स्पष्ट) समझमें आती है। (शरणागत दीन विभीषणको लंकाका राज्य और अपनी अनन्य भक्तिका दान कर दिया तथा रावणका सर्वनाश कर डाला)॥ ३॥ यहाँ, अर्थात् आपके दरबारमें की हुई चतुरता हजारों मूर्खताके समान है। यहाँ तो सीधे-सादे सच्चे भावसे अपना दोष स्वीकार कर लेनेसे ही सारी मलिनता मिट जाती है। यदि तू प्रतिदिन जटायु, अहल्या और शबरीकी

(स्थितिको) याद किये रहेगा तो स्वामीके प्रति तेरा प्रेम कभी कम नहीं होगा। (वे बेचारे सरल, अहंकारहीन शरणागत थे, इससे नाथने उन्हें सहज ही अपनाकर कृतार्थ कर दिया) ॥ ४ ॥ आपका नाम कल्पवृक्षकी भाँति समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देता है। नामका स्मरण करते ही कलियुगके पाप और कपट क्षीण हो जाते हैं ?। हे करुणानिधान! तुलसी यही वरदान चाहता है कि वह सीतापति श्रीरामजीकी भक्तिरूपी गंगाजीके जलमें सदा मछलीकी तरह डूबा रहे ॥ ५ ॥

[२६३]

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीयकी।
रावरो भरोसो नाह कै सु-प्रेम-नेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति गति तीयकी॥ १ ॥
कुकृत-सुकृत बस सब ही सों संग पर्यो,
परखी पराई गति, आपने हूँ कीयकी।
मेरे भलेको गोसाईं! पोचको, न सोच-संक
हौंहुँ किये कहौं सौंह साँची सीय-पीयकी॥ २ ॥
ग्यानहू-गिराके स्वामी, बाहर-अंतरजामी,
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुखकी औ हीयकी?
तुलसी तिहारो, तुमहीं पै तुलसीके हित्त,
राखि कहौं हौं तो जो पै ह्वहौं माखी घीयकी॥ ३ ॥

भावार्थ—हे नाथ! इस अपने दासके मनकी बात आप ठीक-ठीक समझ लीजिये। मेरी बुद्धिरूपी सुन्दर (पतिव्रता) स्त्रीने आपके भरोसेको अपना स्वामी मानकर उसीके साथ विशुद्ध प्रेम करनेका नियम लिया है और सुन्दर आचरणोंमें उसकी रुचि है ॥ १ ॥ पाप और पुण्यके वश होनेके कारण मुझे सभीके साथ रहना पड़ा, इसमें मैं अपनी और परायी दोनोंहीकी चालोंको परख चुका हूँ। हे नाथ! मुझे अपनी भलाई या बुराईकी न तो कोई चिन्ता है, न डर है। (आपके शरण होनेपर भी यदि भले-बुरेकी चिन्ता लगी रही या भय बना रहा तो वह शरणागति ही कैसी? स्वामीके शरण होते ही मैं निश्चिन्त और निर्भय हो गया हूँ।) यह मैं श्रीसीतानाथजीकी शपथ खाकर सच-सच कह रहा हूँ ॥ २ ॥

(बनावटी बात कहूँगा तो वह चलेगी ही नहीं, क्योंकि) आप ज्ञान और वाणीके स्वामी हैं। बाहर और भीतर दोनोंकी बात जाननेवाले हैं। आपके सामने मुँहकी और हृदयकी बात कैसे छिप सकती है? तुलसी आपका है और आप तुलसीका हित करनेवाले हैं। इसमें मैं यदि (कुछ भी कपट) रखकर कहता होऊँ तो मैं घीकी मक्खी हो जाऊँ। भाव, जैसे मक्खी घीमें गिरकर तुरंत मर जाती है, उसी प्रकार मेरा भी सर्वनाश हो जाय॥ ३॥

[२६४]

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो।
चारिहू बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहु काल कहु को है हितू हरि-सो॥ १॥
नये-नये नेह अनुभये देह-गेह बसि,
परखे प्रपंची प्रेम, परत उघरि सो।
सुहृद-समाज दगाबाजिहीको सौदा-सूत,
जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो॥ २॥
बिबुध सयाने, पहिचाने कैधौं नाहीं नीके,
देत एक गुन, लेत कोटि गुन भरि सो।
करम-धरम श्रम-फल रघुबर बिनु,
राखको सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो॥ ३॥
आदि-अंत-बीच भलो भलो करै सबहीको
जाको जस लोक-बेद रह्यो है बगरि-सो।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान,
कैसे कल परै सठ! बैठो सो बिसरि-सो॥ ४॥
जीवको जीवन-प्रान, प्रानको परम हित
प्रीतम, पुनीतकृत नीचन निदरि सो।
तुलसी! तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु,
चित्रकूटको चरित्र चेतु चित करि सो॥ ५॥

भावार्थ—अरे मन! एक बार तू मेरी बात सुन ले। फिर तुझे जो अच्छा लगे सो करना। तू अपने चारों नेत्रों (दो बाहरके और मन-बुद्धिरूप दो भीतरके)-से देखकर बता कि तीनों लोकों और तीनों कालोंमें भगवान्‌के समान तेरा हित करनेवाला कहीं कोई है ?॥ १ ॥ शरीररूपी घरमें रहकर तूने (अनेक योनियोंमें) नये-नये (सम्बन्धियोंके) प्रेमका अनुभव किया और उनके कपटभरे प्रेमको भी परख लिया। अन्तमें सबके प्रेमका भेद खुल गया। (जगत्‌के इस विषय-जनित सम्बन्धी) मित्रोंका समाज क्या है! यह दगाबाजीका सौदासूत (लेन-देनका व्यवहार) है। जब जिसका काम (स्वार्थ) होता है तब वह पैरोंपर गिरने लगता है (परन्तु काम निकल जानेपर कोई बात भी नहीं पूछता।) ॥ २ ॥ देवता भी बड़े चतुर हैं, तूने उनको भलीभाँति पहचाना है या नहीं ? वे पहले करोड़गुना लेते हैं तब कहीं एकगुना देते हैं। अब रहे कर्म-धर्म, सो वे भी श्रीरामके (आधार) बिना केवल परिश्रममात्र हैं। (जो भगवान्‌को छोड़कर, ईश्वरकी परवा न कर केवल अपने सत्कर्मोंपर विश्वास करते हैं उनके वे सत्कर्म ठहर ही नहीं सकते) उनका करना तो राखमें हवन करने या ऊसर जमीनपर पानी बरसनेके समान (निष्फल) है॥ ३ ॥ जो आदिमें, मध्यमें और अन्तमें भले हैं और सभीका सदा कल्याण करते हैं, तथा जिनका यश लोक और वेदमें सर्वत्र फैल रहा है ऐसे श्रीसीतानाथ रामचन्द्रजीके समान शीलनिधान स्वामी दूसरा और कोई नहीं है। अरे दुष्ट! तू उसे भूला-सा बैठा है, फिर तुझे कैसे कल पड़ रहा है॥ ४ ॥ अरे! जो जीवका जीवन, प्राणोंका परम हितू, अत्यन्त प्रिय और नीचोंको पवित्र करनेवाला है, तू उसका निरादर कर रहा है। तुलसी! कोशलपति कृपालु श्रीरामजीने तेरे लिये चित्रकूटमें जो लीला रची थी, (घोड़ोंपर सवार दो सुन्दर राजपूत वीरोंके वेषमें साक्षात् दर्शन दिये थे) उसे चित्तमें स्मरण कर॥ ५ ॥

[२६५]

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं 'जन हौं सिय-पीको'।
केहि अभाग जान्यो नहीं, जो न होइ नाथ सों नातो-नेह न नीको॥ १ ॥
जल चाहत पावक लहौं, बिष होत अमीको।
कलि-कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि तमीको॥ २ ॥

जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनी-घीको।
सुनि उपचार बिकारको सुबिचार करौं जब, तब बुधि बल हरै हीको॥ ३॥
प्रभु सों कहत सकुचात हौं, परौं जनि फिरि फीको।
निकट बोलि, बलि, बरजिये, परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जीको॥ ४॥

भावार्थ—हे प्रभो! मैं शरीरको पवित्र रखता हूँ, मनमें भी (आपके प्रेमके लिये) रुचि है और मुँहसे भी कहता हूँ कि मैं श्रीसीतानाथजीका सेवक हूँ; किन्तु समझमें नहीं आता कि किस दुर्भाग्यके कारण नाथके साथ मेरा सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं होता॥ १॥ मैं पानी चाहता हूँ तो आग मिलती है और इसी प्रकार अमृतका जहर बन जाता है (शान्तिके बदले अशान्तिकी जलन मिलती है और अमृतरूपी सत्कर्म, अभिमानरूपी विष पैदा कर देते हैं)। संतोंने कलियुगकी जो कुटिल चालें कही हैं वे सब ठीक हैं। मुझे सूर्य और रात्रिका कुछ भी ज्ञान नहीं है। (अर्थात् मैं ज्ञान और अज्ञानको यथार्थरूपसे नहीं पहचान सकता)॥ २॥ कलियुग मुझे अन्धा समझकर वनकी सिंहनीके घीका अंजन लगानेको कहता है, जब मैं यह विकार-भरा उपचार सुनकर उसपर विचार करता हूँ कि मुझे उसका घी कैसे मिले? (अज्ञानरूपी वनमें वासनारूपी सिंहनी रहती है। विषय उसका घी है वह तो समीप जाते ही खा जायगी। विषयोंमें फँसे हुए जीवको ज्ञानरूपी नेत्र कैसे मिल सकते हैं?) तब वह मेरे हृदयके बुद्धि-बलको हर लेता है॥ ३॥ (बुद्धि-बलके नष्ट हो जानेसे मुझे कलियुगका बताया हुआ उपचार यानी विषय-भोग अच्छा लगता है और मैं उसीमें लग जाता हूँ। इसी विघ्नके कारण मैं आपके साथ सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध और प्रेम नहीं कर पाता) आपसे कुछ कहना है, पर उसे कहते संकोच हो रहा है कि कहीं मेरी बात फिर फीकी न पड़ जाय (खाली न चली जाय) इससे मैं आपकी बलैया लेता हूँ, (बात यह है कि जरा अपने) पास बुलाकर इसे (कलियुगको) रोक दीजिये, जिससे यह तुलसी-सरीखे जड जीवोंका खयाल छोड़ दे॥ ४॥

[२६६]

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु! त्यों त्यों दूरि पर्‌यो हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम! हौं हूँ रावरो, जदपि अघ अवगुननि भर्‌यो हौं॥ १॥

बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृपतें भिखारि करि, सुमतितें कुमति कर्‌यो हौं॥ २॥
अगनित गिरि-कानन फिर्‌यो, बिनु आगि जर्‌यो हौं।
चित्रकूट गये हौं लखि कलिकी कुचालि सब, अब अपडरनि डर्‌यो हौं॥ ३॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं, हाथ जोरि खर्‌यो हौं।
चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि प्रभुसों गुदरि निबर्‌यो हौं॥ ४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान! ज्यों-ज्यों मैं आपके निकट होना चाहता हूँ, त्यों-ही-त्यों दूर होता चला जाता हूँ। हे रामजी! आप चारों युगोंमें सदा एकरस हैं और मैं भी आपका रहा आया हूँ, यद्यपि मैं पापों और अवगुणोंसे भरा हूँ॥ १॥ आपसे अलग रहनेका मौका पाकर इस नीच कलियुगने मुझे बीचहीमें छलोंसे छल लिया (अज्ञानसे ही इसको जीवत्व प्राप्त हो गया।) मैं सुवर्ण था, पर इसने कुवर्ण कर दिया (नित्य आनन्दघनरूपसे दुःखग्रस्त जीवरूपमें परिणत कर दिया)। राजासे रंक बना डाला और ज्ञानीसे अज्ञानी कर डाला॥ २॥ तबसें मैं (अनेक योनियोंमें) अगणित पहाड़ों और जंगलोंमें भटकता रहा और बिना ही आगके (अज्ञानजनित दुःखदावानलसे) जलता रहा। परन्तु जब मैं चित्रकूट गया, (और वहाँ आपका प्रेमपूर्वक भजन करने लगा) तब (आपकी कृपासे) मैं इस कलिकी सारी कुचालें तो समझ गया (तथापि) अब मैं अपने ही डरसे डर रहा हूँ॥ ३॥ मैं हाथ जोड़कर प्रभुके सामने खड़ा हुआ मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पहचाना हुआ चोर फिर जीवको (प्रायः) मार ही डालता है; (कलियुग पहचाना हुआ चोर है, वह दाँव देख रहा है) इस बातको सुनकर तुलसी अपने स्वामीसे विनय करके निश्चिन्त हो चुका (अब आप स्वयं ही उचित समझकर उपाय कीजिये)॥ ४॥

[२६७]

पन करि हौं हठि आजुतें रामद्वार पर्‌यो हौं।
'तू मेरो' यह बिन कहे उठिहौं न जनमभरि, प्रभुकी सौंकरि निर्‌यो हौं॥ १॥
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्‌यो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहुबार जनमि जग, नरकनिदरि निकर्‌यो हौं॥ २॥

हौं मचला लै छाड़िहौं, जेहि लागि अर्‍यो हौं।
तुम दयालु, बनिहै दिये, बलि, बिलंब न कीजिये, जात गलानि गर्‍यो हौं॥ ३॥
प्रगट कहत जो सकुचिये, अपराध-भर्‍यो हौं।
तौ मनमें अपनाइये, तुलसीहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्‍यो हौं॥ ४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आजसे मैं सत्याग्रह करनेकी प्रतिज्ञा करके आपके द्वारपर पड़ गया हूँ; जबतक आप यह न कहेंगे कि 'तू मेरा है' तबतक मैं यहाँसे जीवनभर नहीं उठूँगा,यह मैं आपकी शपथ खाकर कह चुका हूँ॥ १॥ (यह न समझियेगा कि पुलिसके धक्के खाकर मैं उठ जाऊँगा) यमदूत मुझे धक्के मार-मारकर थक गये, मुझे जबरदस्ती नरकके द्वारसे हटाना चाहा, पर मैं वहाँसे उनके हटाये हटा ही नहीं (इतने अधिक पाप किये कि अनेक जीवन नरकमें ही बीते)। संसारमें बार-बार जन्म लेकर (माताके) पेटकी असह्य पीड़ाको सहा, तब कहीं नरकका निरादर कर वहाँसे निकला हूँ॥ २॥ जिस चीजके लिये मचल गया हूँ और अड़ बैठा हूँ उसे लेकर ही छोड़ूँगा, क्योंकि आप दयालु हैं, (मेरा अड़ना देखकर अन्तमें) आपको वह चीज देनी ही पड़ेगी। मैं आपकी बलैया लेता हूँ (जब देनी ही है, तब तुरंत दे डालिये) देर न कीजिये। क्योंकि मैं ग्लानिके मारे गला जाता हूँ। (लोग कहेंगे कि ऐसे दयालु स्वामीके द्वारपर धरना दिये इतने दिन बीत गये, इसलिये तुरंत इतना कह दीजिये कि 'तुलसी मेरा है।' बस, इतना सुनते ही मैं धरना त्याग दूँगा)॥ ३॥ मैं अपराधोंसे भरा हूँ, इस कारणसे यदि आपको सबके सामने प्रकटमें कहते संकोच होता है तो कृपाकर मनमें ही तुलसीको अपना लीजिये, क्योंकि मैं कलिको देखकर बहुत घबरा गया हूँ॥ ४॥

[२६८]

तुम अपनायो तब जानिहौं, जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सौं नेह छाड़ि छल करिहै॥ १॥
सुतकी प्रीति, प्रतीति मीतकी, नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामिसों, चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेकते नहिं टरिहै॥ २॥

हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि-लाभ दुख-सुख सबै समचित हित-अनहित, कलि-कुचालि परिहरिहै॥ ३॥
प्रभु-गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो रामको बिस्वास, प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै॥ ४॥

भावार्थ—जब मेरा मन (आपकी ओरको) फिर जायगा, तभी मैं समझूँगा कि आपने मुझे अपना लिया। जब यह मन, जिस सहज स्वभावसे ही विषयोंमें लग रहा है, उसी प्रकार कपट छोड़कर आपके साथ प्रेम करेगा (जबतक ऐसा नहीं होता तबतक मैं कैसे समझूँ कि मुझको आपने अपना दास मान लिया)॥ १॥ जैसे मेरा वह मन पुत्रसे प्रेम करता है, मित्रपर विश्वास करता है और राज-भयसे डरता है, वैसे ही जब वह अपना सब स्वार्थ केवल स्वामीसे ही रखेगा और चारों ओरसे चातककी तरह अपनी अनन्य टेकसे नहीं टलेगा (एक प्रभुपर ही निर्भर करेगा)॥ २॥ अत्यन्त आदर पानेपर जब उसे हर्ष न होगा, निरादर होनेपर वह जलकर न मरेगा और हानि-लाभ, सुख-दुःख, भलाई-बुराई सबमें चित्तको सम रखेगा और कलिकालकी कुचालोंको (सर्वथा) छोड़ देगा (तभी मानूँगा कि नाथ मुझे अपना रहे हैं)॥ ३॥ और जब मेरा मन प्रभुका गुणानुवाद सुनते ही हर्षमें विह्वल हो जायगा, मेरे नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बहने लगेगी तभी तुलसीदासको यह विश्वास होगा कि वह श्रीरामजीका हो गया। तब उस (अनन्य) प्रेमको देखकर हृदयमें आनन्द उमड़कर भर जायगा। (हे प्रभो! शीघ्र ही अपनाकर मेरी ऐसी दशा कर दीजिये)॥ ४॥

[२६९]

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीनको?
सुख जीवन ज्यों जीवको, मनि ज्यों फनिको हित, ज्यों धन लोभ-लीनको॥ १॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीनको।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर! पावन प्रेम पीनको॥ २॥
मनसाको दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रबीनको।
तुलसिदासको भावतो, बलि जाउँ दयानिधि! दीजै दान दीनको॥ ३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! मुझे क्या कभी आप ऐसे प्यारे लगेंगे, जैसा मछलीको जल प्यारा लगता है, जीवको सुखमय जीवन प्यारा लगता है, साँपको मणि प्रिय लगती है और अत्यन्त लोभीको धन प्यारा लगता है?॥ १॥ अथवा जैसे नवयुवक नायकको स्वभावसे ही नवयुवती चतुरा नायिका प्यारी लगती है, वैसे ही हे करुणाकी खानि! मेरे मनमें केवल आपके प्रति पवित्र और अनन्य प्रेमकी ही एक लालसा उत्पन्न कर दीजिये॥ २॥ वेद कहते हैं कि प्रभु मनमानी वस्तु देनेवाले हैं और बड़े ही चतुर हैं (बिना ही कहे मनकी बात जानकर उसे पूरी कर देते हैं)। हे दयानिधे! मैं आपकी बलैया लेता हूँ, इस दीन तुलसीदासको भी उसकी मनचाही वस्तुका दान दे दीजिये॥ ३॥

[२७०]

कबहुँ कृपा करि रघुबीर! मोहू चितैहो।
भलो-बुरो जन आपनो, जिय जानि दयानिधि! अवगुन अमित बितैहो॥ १॥
जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौ सही, तुमहू अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो॥ २॥
बिनय करौं अपभयहु तें, तुम्ह परम हितै हो।
तुलसिदास कासों कहै, तुमही सब मेरे, प्रभु-गुरु, मातु-पितै हो॥ ३॥

भावार्थ—हे रघुवीर! कभी कृपाकर मेरी ओर भी देखेंगे? हे दयानिधान! 'भला-बुरा जो कुछ भी हूँ, आपका दास हूँ', अपने मनमें इस बातको समझकर क्या मेरे अपार अवगुणोंका अन्त कर देंगे? (अपनी दयासे मेरे सब पापोंका नाश कर मुझे अपना लेंगे?)॥ १॥ (अबसे पूर्व) प्रत्येक जन्ममें यह मन मुझे जीतता चला आया है (मैं इससे हारकर विषयोंमें फँसता रहा हूँ), इस बार क्या आप मुझे इससे जिता देंगे?) (क्या यह मेरे वश होकर केवल आपके चरणोंमें लग जायगा?) (तब) मैं तो सनाथ हो ही जाऊँगा किन्तु आप भी यदि मेरी क्षुद्रतासे नहीं डरेंगे, तो 'अनाथ-पति' पुकारे जाने लगेंगे (मेरी नीचतापर ध्यान न देकर मुझे अपना लेंगे तो आपका अनाथ-नाथ विरद भी सार्थक हो जायगा)॥ २॥ मैं अपने ही डरके मारे आपसे यों विनय कर रहा हूँ। आप तो मेरे परम हितू हैं। (परन्तु नाथ!)

यह तुलसीदास अपना दुःख और किसे सुनाने जाय? क्योंकि मेरे तो मालिक, गुरु, माता, पिता आदि सब कुछ केवल आप ही हैं॥ ३॥

[२७१]

जैसो हौं तैसो राम रावरो जन, जनि परिहरिये।
कृपासिंधु, कोसलधनी! सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिये॥ १॥
हौं तौ बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये।
तुम सुधारि आये सदा सबकी सबही बिधि, अब मेरियो सुधरिये॥ २॥
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत इहि डर डरिये।
कपि-केवट कीन्हे सखा जेहि सील, सरल चित, तेहि सुभाउ अनुसरिये॥ ३॥
अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिये।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहु बिलोचन पीर होत हित करिये॥ ४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! मैं (भला-बुरा) कैसा भी हूँ, पर हूँ तो आपका दास ही, इससे मुझे त्यागिये नहीं। हे कोसलनाथ! आप कृपाके समुद्र और शरणागतोंका पालन करनेवाले हैं। अपनी इस शरणागत-वत्सलताकी रीतिपर ही चलिये॥ १॥ मैं तो (काम, क्रोध आदि) दूसरोंके द्वारा पहले ही बिगाड़ा हुआ हूँ, इस बिगड़े हुएको (शरणमें न रखकर और) न बिगाड़िये। आप तो सदा ही सबकी सब तरहसे सुधारते आये हैं, अब मेरी भी सुधार दीजिये॥ २॥ मुझे अपनानेमें जगत् आपकी हँसी करेगा, आप इस डरसे क्यों डर रहे हैं? (आपका तो सदासे यह बाना ही है।) आपने अपने जिस शील और सरल चित्तसे बंदरों और केवटको अपना मित्र बनाया था, मेरे साथ भी उसी स्वभावके अनुसार बर्ताव कीजिये॥ ३॥ यद्यपि मैं अपराधी हूँ, पर हूँ तो आपका ही। इसलिये तुलसीको आप न भुलाइये। (अपना) टूटा हुआ भी हाथ गले बँध जाता है और फूटी हुई आँखमें भी जब दर्द होता है, तब उसके अच्छे करानेकी चेष्टा की ही जाती है। (इसी प्रकार मैं भी यद्यपि टूटी बाँह और फूटी आँखके समान किसी कामका नहीं हूँ तथापि आपका ही हूँ, इसलिये आप मुझे कैसे छोड़ सकते हैं?)॥ ४॥

[२७२]

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु कोउ न कहूँ हितु मेरो॥ १॥
अगुन-अलायक-आलसी जानि अधम/अधनु अनेरो।
स्वारथके साथिन्ह तज्यो तिजराको-सो टोटक, औचट उलटि न हेरो॥ २॥
भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवनिहू देव! परिहरयो, अन्याव न तिनको हौं अपराधी सब केरो॥ ३॥
नामकी ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो।
जगत-बिदित बात ह्वै परी, समुझिये धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो॥ ४॥
ह्वैहै जब-तब तुम्हहिं तें तुलसीको भलेरो।
दिन-हू-दिन देव!/दीन बिगरि है, बलि जाउँ, बिलंब किये, अपनाइये सबेरो॥ ५॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आप मुझपर मन मैला न कीजिये, मेरी ओरसे अपनी (कृपाकी) नजर न फिराइये (मुझको दोषी समझकर न तो क्रोध कीजिये और न अपनी कृपादृष्टि ही हटाइये)। हे नाथ! सुनिये, इस लोक और परलोकमें आपको छोड़कर मेरा कल्याण करनेवाला कोई दूसरा नहीं है॥ १॥ मुझे गुणहीन, नालायक, आलसी, नीच अथवा दरिद्र और निकम्मा समझकर (जगत्‌के) स्वार्थके संगियोंने तिजारीके टोटकेकी तरह छोड़ दिया और फिर भूलकर भी पलटकर मुझे नहीं देखा! (स्वार्थ छूटते ही ऐसा छोड़ दिया कि फिर कभी यादतक नहीं किया)॥ २॥ मुझे भक्तिहीन, वेदोक्त मार्गसे बाहर एवं कलियुगके पापोंसे घिरा हुआ देखकर, हे नाथ! देवताओंने भी छोड़ दिया। इसमें उनका कोई अन्याय भी नहीं है, क्योंकि मैं सभीका अपराधी हूँ॥ ३॥ मैं तो बस, आपके नामकी ओट लेकर पेट भर रहा हूँ, इतनेपर भी आपका दास कहलाता हूँ और यह बात सारा संसार जान गया है। अब आप ही विचार कीजिये कि संसार बड़ा है या वेद? (वेदोंकी विधिको देखते तो मैं आपका दास नहीं हूँ, परन्तु जब संसार मुझको आपका दास मानता और कहता है, तब आपको भी यही स्वीकार कर लेना चाहिये।)॥ ४॥ तुलसीका भला तो जब कभी होगा तब

आपके ही द्वारा होगा। (आखिर जब आपको मेरा कल्याण करना ही पड़ेगा तो शीघ्र ही कर देना उत्तम है) मैं आपकी बलैया लेता हूँ, यदि आप देर करेंगे, तो यह गरीब दिन-पर-दिन बिगड़ता ही जायगा। (तब सुधारनेमें भी अधिक कष्ट होगा) इसलिये मुझे शीघ्र ही अपना लीजिये ॥ ५ ॥

[२७३]

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबंधु ! सेवक, सखा, आरत, अनाथपर सहज छोह केहि केरे ॥ १ ॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।
कृपा-कोप-सतिभायहू, धोखेहु-तिरछेहू, राम! तिहारेहि हेरे ॥ २ ॥
जो चितवनि सौंधी लगै, चितइये सबेरे।
तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील, अब जिवन-अवधि अति नेरे ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे नाथ! आपको छोड़कर मैं और किससे कहूँ ? मेरा हितू और कौन है ? हे दीनबन्धो! (आपके सिवा) सेवकपर, मित्रपर, दुःखियापर और अनाथपर स्वभावसे ही (और) किसकी कृपा है ? ॥ १ ॥ (आपकी नजरसे ही) बहुत-से पापी इस संसार-सागरसे बिना ही नाव और बेड़ेके तर गये। हे रामजी! आपने कृपासे या क्रोधसे, सच्चे भावसे या धोखेसे अथवा तिरछी दृष्टिसे ही एक बार उनकी ओर देखभर लिया था ॥ २ ॥ इन दृष्टियोंमें जो आपको अच्छी लगे, उसी दृष्टिसे जल्दी (मेरी ओर) देख लीजिये (बस, मेरा काम तो आपके देखते ही बन जायगा)। (बात यह है कि) तुलसीदासको अब अपना लीजिये, इसमें देर न कीजिये, क्योंकि अब जीवनका अन्त बहुत ही समीप आ गया है ॥ ३ ॥

[२७४]

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित-दीनको ?
को कृपालु स्वामी-सारिखो, राखै सरनागत सब अँग बल-बिहीनको ॥ १ ॥
गनिहि, गुनिहि साहिब लहै, सेवा समीचीनको।
अधम/अधन अगुन आलसिनको पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीनको ॥ २ ॥

मुखकै कहा कहौं, बिदित है जीकी प्रभु प्रबीनको।
तिहू काल, तिहु लोकमें एक टेक रावरी तुलसीसे मन मलीनको॥ ३॥

भावार्थ—हे देव! कहाँ जाऊँ? मुझ दुःखी-दीनको कहाँ ठौर-ठिकाना है? आपके समान कृपालु स्वामी और कौन है, जो सब प्रकारके साधनोंमें बलसे विहीन शरणागतको आश्रय दे?॥ १॥ (आपको छोड़कर संसारमें) जो दूसरे मालिक हैं, वे तो धनी, गुणवान् यानी सद्‌गुण-सम्पन्न और भलीभाँति सेवा करनेवाले सेवकको ही अपनाते हैं। (मैं न तो धनवान् हूँ, न मुझमें कोई सद्‌गुण है और न मैं भलीभाँति सेवा करनेवाला हूँ) मुझ-सरीखे नीच अथवा निर्धन (साधनहीन), सद्‌गुणोंसे हीन, आलसियोंका पालन-पोषण करना तो नित्य उत्साही श्रीरघुनाथजीको ही शोभा देता है॥ २॥ मुँहसे क्या कहूँ प्रभो! आप तो स्वयं चतुर हैं, मेरे जीकी आप सब जानते हैं। तुलसी-सरीखे मलिन मनवालेके लिये तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) और तीनों कालोंमें एक आपका ही सहारा है॥ ३॥

[२७५]

द्वार द्वार दीनता कही, काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनी दस दिसा, दुख-दोष-दलन-छम, कियो न सँभाषन काहूँ॥ १॥
तनु जन्यो / जनतेऊ कुटिल कीट ज्यों, तज्यों मातु-पिताहूँ।
काहेको रोष, दोष काहि धौं, मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ॥ २॥
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माँहू।
तोसे पसु-पाँवर-पातकी परिहरे न सरन गये, रघुबर ओर बिनाहूँ॥ ३॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति बिनाहू।
नामकी महिमा, सील नाथको, मेरो भलो बिलोकि अब तें सकुचाहुँ, सिहाहूँ॥ ४॥

भावार्थ—हे नाथ! मैं द्वार-द्वारपर दाँत निकालकर और पैरों पड़-पड़कर अपनी दीनता सुनाता फिरा। दुनियामें ऐसे-ऐसे दयालु हैं, जो दसों दिशाओंके दुःखों और दोषोंके दमन करनेमें समर्थ हैं, किन्तु मुझसे तो किसीने बात भी नहीं की॥ १॥ माता-पिताने मुझे ऐसा त्याग दिया, जैसे कुटिल कीड़ा अर्थात्

सर्पिणी अपने ही शरीरसे जने हुए (बच्चे)-को त्याग देती है। मैं किसलिये क्रोध करूँ और किसको दोष दूँ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्यसे हुआ। (मैं ऐसा नीच हूँ कि) मेरी छायातक छूनेमें भी लोग संकोच करते हैं॥ २॥ मुझे दुःखी देखकर संतोंने कहा कि तू मनमें चिन्ता न कर। तुझ-सरीखे पामर और पापी पशु-पक्षियोंतकको, शरणमें जानेपर श्रीरघुनाथजीने नहीं त्यागा और अपनी शरणमें रखकर उनका अन्ततक निर्वाह किया (तू भी उन्हींकी शरणमें जा)॥ ३॥ यह तुलसी तभीसे आपका हो गया और आपपर इसकी प्रीति-प्रतीति न होनेपर भी तभीसे यह बड़े सुखमें भी है। (प्रीति-प्रतीति होती तो आनन्दकी कोई सीमा ही न रहती।) हे नाथ! आपके नामकी महिमा तथा शीलने (मेरी नालायकी होनेपर भी) मेरा कल्याण किया, यह देखकर अब मैं मन-ही-मन सकुचाता हूँ (इसलिये कि मैंने कृपापात्र होने योग्य तो एक भी कार्य नहीं किया, फिर भी मुझ कृतघ्नपर प्रभुकी ऐसी कृपा है) और आपकी शरणागतवत्सलताकी प्रशंसा करता हूँ॥ ४॥

[२७६]

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो?
राम रावरे बिन भये जन जनमि-जनमि जग दुख दसहू दिसि पायो॥ १॥
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार, परी न छार, मुह बायो॥ २॥
असन-बसन बिनु बावरो जहँ-तहँ उठि धायो।
महिमा मान/असु प्रिय प्रानते तजि खोलि खलनि आगे, खिनु-खिनु पेट खलायो॥ ३॥
नाथ! हाथ कछु नाहि लग्यो, लालच ललचायो।
साँच कहौं, नाच कौन सो जो, न मोहि लोभ लघु हौं निरलज्ज नचायो॥ ४॥
श्रवन-नयन-मग मन/अग लगे, सब थल पतितायो।
मूड़ मारि, हिय हारिकै, हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो॥ ५॥
दसरथके! समरथ तुहीं, त्रिभुवन जसु गायो।
तुलसी नमत अवलोकिये, बाँह-बोल बलि दै बिरुदावली बुलायो॥ ६॥

भावार्थ—मैंने क्या नहीं किया? मैं कहाँ नहीं गया? कौन-सी जगह जानेको बची? और किसके आगे सिर नहीं झुकाया? किन्तु, हे श्रीरामजी! जबतक आपका दास नहीं हुआ, तबतक जगत्‌में बार-बार जन्म ले-लेकर मैंने दसों दिशाओंमें केवल दुःख ही पाया (कहीं स्वप्नमें भी सुख नहीं मिला)॥ १॥ (आपका खास दास होनेपर भी मैं भ्रमवश विषयोंसे सुख मिलनेकी) आशाके वशमें हो अशुद्ध हृदयके मालिकोंके सामने अपनेको जताता (समर्पण करता) फिरा और बार-बार द्वार-द्वारपर अपनी गरीबी सुनाकर मुँह बाया, पर उसमें खाक भी न पड़ी। (सुख-शान्तिका कहीं आभास भी नहीं मिला)॥ २॥ भोजन और वस्त्रके बिना पागलकी तरह जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा। प्राणोंसे प्यारी मान-प्रतिष्ठाको त्याग कर दुष्टोंके सामने क्षण-क्षणमें अपना यह (खाली) पेट खोलकर दिखाया॥ ३॥ हे नाथ! (विषयोंके) लोभके मारे बहुत ही लालच किया पर कहीं कुछ भी हाथ नहीं लगा। मैं सच कहता हूँ, ऐसा कौन-सा नाच है जो नीच लोभने मुझ निर्लज्जको न नचाया हो?॥ ४॥ कान, आँखें और मनको भी अपने-अपने मार्गमें लगाया, परन्तु सभी जगह उलटा पतित ही होता गया। (सब राजे-महाराजे भी जाँच लिये। कहीं किसी विषयमें किसीके द्वारा भी सुख-शान्ति नहीं मिली, तब) सिर पीटकर हृदयमें हार मान गया—निराश हो गया। इसीसे अब घबराकर आपके चरणोंकी शरण तककर आया हूँ, क्योंकि इसीमें मुझे अपना हित दिखाई देता है॥ ५॥ हे दशरथकुमार! आप ही समर्थ हैं। तीनों लोकमें आपका ही यश गाया जाता है। तुलसी आपके चरणोंमें प्रणाम कर रहा है, इसकी ओर देखिये, मैं आपकी बलैया लेता हूँ। आपकी विरदावलीने ही मुझे बाँह और वचन देकर बुलाया है (आपके पतित-पावन और शरणागतवत्सल विरदकी देख-रेखमें मेरा कल्याण क्यों न होगा?)॥ ६॥

[२७७]

राम राय! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो?
स्वामी-सहित सबसों कहौं, सुनि-गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो॥ १॥
देह-जीव-जोगके सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये बिचार सार कदलि ज्यों, मनि कनकसंग लघु लसत बीच बिच काँचो॥ २॥

'बिनय-पत्रिका' दीनकी, बापु ! आपु ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिये पाँचो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे महाराज श्रीरामचन्द्रजी! आपको छोड़कर मेरा सच्चा हितू और कौन है ? मैं अपने स्वामीसहित सभीसे कहता हूँ, उसे सुन-समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर खींच दीजिये ॥ १ ॥ शरीर और जीवात्माके सम्बन्धके जितने सखा या हितू मिलते हैं, वे सब (असत्) मिथ्या टाँकोंसे सिले हुए हैं। (संसारके सभी सम्बन्ध मायिक हैं) विचार करनेपर ये 'सखा' केलेके पेड़के सारके समान हैं। (जैसे केलेके पेड़को छीलनेपर छिलके ही निकलते हैं, वैसे ही संसारके सारे सम्बन्ध भी सारहीन केवल अज्ञानजनित ही हैं) ये वैसे ही सुन्दर जान पड़ते हैं, जैसे मणि-सुवर्णके संयोगसे बीच-बीच क्षुद्र काँच भी शोभा देता है ॥ २ ॥ हे बापजी! इस दीनकी लिखी 'विनय-पत्रिका' को तो आप स्वयं ही पढ़िये। (किसी दूसरेसे न पढ़वाइये।) तुलसीने इसमें अपने हृदयकी सच्ची बातें ही लिखी हैं, इसपर पहले आप अपने (दयालु) स्वभावसे 'सही' बना दीजिये। फिर पीछे पंचोंसे पूछिये ॥ ३ ॥

[२७८]

पवन-सुवन !रिपु-दवन !भरतलाल !लखन !दीनकी।
निज निज अवसर सुधि किये, बलि जाउँ, दास-आस पूजि है खासखीनकी ॥ १ ॥
राज-द्वार भली सब कहैं साधु-समीचीनकी।
सुकृत-सुजस, साहिब-कृपा, स्वारथ-परमारथ, गति भये गति-बिहीनकी ॥ २ ॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीनकी।
प्रीति-रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहि परमिति पराधीनकी ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे पवनकुमार! हे शत्रुघ्नजी! हे भरतलालजी! हे लखनलालजी! अपने-अपने अवसरसे (मौका लगते ही) इस दीन तुलसीको याद करना। मैं आपलोगोंकी बलैया लेता हूँ। आपके (कृपापूर्वक) ऐसा करनेसे इस सर्वथा दुर्बल दासकी आशा पूरी हो जायगी (श्रीरघुनाथजी मेरी पत्रिकापर 'सही' कर देंगे) ॥ १ ॥ राज-दरबारमें सच्चे साधुओंकी तो सभी अच्छी कहते हैं, इसमें क्या विशेषता है ? किन्तु यदि आपलोग इस शरणरहित दीनकी

सिफारिश कर देंगे तो इसको भगवान्‌की शरण मिल जायगी, आपको पुण्य होगा और सुन्दर यश फैलेगा, आपके स्वामी आपपर कृपा करेंगे (क्योंकि वह दीनोंपर दया करनेवालोंपर स्वाभाविक ही प्रसन्न हुआ करते हैं) आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायँगे॥ २॥ इसलिये अवसर देखकर (मौका पाते ही) इस पतित तुलसीकी बात सुधार देना। शरणागतवत्सल कृपालु रघुनाथजीसे मुझ पराधीनके प्रेमकी रीतिकी हदको समझाकर कह देना॥ ३॥

[२७९]

मारुति-मन, रुचि भरतकी लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ! नाम सों परतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है॥ १॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीब निवाजकी, देखत गरीबको साहब बाँह गही है॥ २॥
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है'।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथकी, परी रघुनाथ सही है॥ ३॥
रघुनाथ हाथ

प्रसंग—भगवान् श्रीरामका दिव्य दरबार लगा है, प्रभु जगज्जननी श्रीजानकीजीके सहित अलौकिक रत्नजटित राज्यसिंहासनपर विराजमान हैं। हनुमान्‌जी प्रेममग्न हुए नाथकी ओर अनन्य दृष्टिसे निहारते हुए चरण दबा रहे हैं। भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी अपने-अपने अधिकारानुसार सेवामें संलग्न हैं। उसी समय तुलसीदासजीकी 'विनय-पत्रिका' पहुँची। तुलसीदासजीकी प्रार्थना सबको याद थी। भक्त-प्रिय मारुति श्रीहनुमान् और भरतने धीरेसे लक्ष्मणसे कहा कि बड़ा अच्छा मौका है, इस समय तुलसीदासकी बात छेड़ देनी चाहिये। लक्ष्मणजीने उनकी रुख देखकर प्रभुकी सेवामें 'विनय-पत्रिका' पेश कर दी।

भावार्थ—हनुमान्‌जी और भरतजीका मन और उनकी रुचिको देखकर लक्ष्मणजीने भगवान्‌से कहा कि हे नाथ! कलियुगमें भी आपके एक दासकी आपके नामसे प्रीति और प्रतीति निभ गयी (देखिये, उसकी यह सच्ची विनय-पत्रिका भी आयी है)॥ १॥ इस बातको सुनकर सारी सभा एकमतसे

कह उठी कि हाँ, यह बात सर्वथा सत्य है, हमलोग भी उसकी रीति जानते हैं। गरीब-निवाज भगवान् श्रीरामजीकी उसपर (बड़ी) कृपा है। स्वामीने सबके देखते-देखते उस गरीबकी बाँह पकड़कर उसे अपना लिया है॥ २॥ सबकी बात सुनकर श्रीरामजीने मुसकराकर कहा कि हाँ, यह सत्य है, मुझे भी उसकी खबर मिल गयी है। (श्रीजनकनन्दिनीजी कई बार कह चुकी होंगी, क्योंकि गोसाईंजी पहले उनसे प्रार्थना कर चुके हैं।) बस, फिर क्या था—अनाथ, तुलसीकी रची हुई विनय-पत्रिकापर रघुनाथजीने अपने हाथसे 'सही' कर दी। अपनी बात बननेपर मैंने भी परम प्रसन्न होकर भगवान्के चरणोंमें सिर टेक दिया (सदाके लिये शरण हो गया)॥ ३॥

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

परिशिष्ट

पदोंमें आये हुए कथा-प्रसंग

पद-संख्या ३—कालकूट-विष—

देवता और असुरोंने एक बार मेरु-पर्वतकी मथानी और शेषनागका दण्ड बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उसमें सबसे पहले हलाहल विष निकला और उसने दसों दिशाओंको अपनी ज्वालासे व्याप्त कर दिया। फिर तो देवता और असुर सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। सबोंने मिलकर विचारा कि बिना भक्तवत्सल भगवान् शंकरके इस महाघातक विषसे त्राण पाना कठिन है। इसलिये उन्होंने एक साथ आर्त्त-स्वरसे भगवान् शंकरको पुकारा। भक्त-आर्तिहर करुणामय भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रकट हुए और उनको भयभीत देखकर हलाहल विषको उठाकर पान कर गये। परन्तु शीघ्र ही उन्हें स्मरण हुआ कि हृदयमें तो ईश्वर अपनी अखिल सृष्टिके साथ विराजमान हैं, इसलिये उन्होंने उस विषको कण्ठसे नीचे नहीं उतरने दिया। उस विघ्नके प्रभावसे उनका कण्ठ नीला हो गया और दोषपूर्ण वह विष भगवान्‌का भूषण बन गया तभीसे शिव 'नीलकण्ठ' कहलाने लगे।

त्रिपुर-वध—

तारक नामका एक असुर था। उसके तीन पुत्र हुए—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमललोचन। उन तीनोंने महाघोर तप करके ब्रह्माजी और शिवजीको प्रसन्न किया तथा उनसे अन्तरिक्षके तीन पुरोंका अधिकार प्राप्त किया। अधिकारमदसे उन्मत्त वे असुर फिर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगे। उनके उपद्रवसे सारा विश्व काँप उठा और देवतालोग पीड़ित हो उठे। अन्तमें सबोंने मिलकर विष्णुभगवान्‌की अध्यक्षतामें भगवान् शंकरका स्तवन किया। शिवजी शीघ्र प्रकट हुए और एक ही बाणमें तीनों पुरोंका विध्वंस कर तीनों राक्षसोंका नाश किया। तबसे इनका नाम 'त्रिपुरारि' पड़ा।

काशी-मुक्ति—

काशीमें मृत्यु-समय जीवमात्रको श्रीशंकर 'राम-नाम' का मन्त्र देते हैं, जिससे उनकी मुक्ति हो जाती है।

कामरिपु (मदन-दहन)—

सती-दाहके पश्चात् भगवान् शंकर हिमालय-पर्वतके प्रान्तरमें एक निर्जन स्थानमें समाधिमग्न हो गये। उसी समय सतीने पार्वतीके रूपमें हिमाचल नामक पर्वतराजके घर जन्म लिया। उधर तारकासुरके अत्याचारके मारे समस्त देवताओंके साथ इन्द्रके नाकोंदम आ गया। तारकासुरके वधके विषयमें यह निश्चय था कि यह महादेवके पुत्रके द्वारा मारा जायगा। परन्तु भगवान् शंकर समाधिमग्न थे, इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। क्योंकि तारकासुरका अत्याचार असह्य हो रहा था। अतः उन्होंने कामदेवको महादेवका ध्यान तोड़नेके लिये भेजा।

इधर पार्वती, किशोरावस्थाको प्राप्त हो तथा नारदमुनिके मुखसे यह भविष्यवाणी सुनकर कि भूतभावन महादेव ही उसके पति होंगे, नित्य उसी हिमालय-पर्वतपर ध्यानावस्थित शंकरकी पूजा करने जाती थी। एक दिन जैसे ही पार्वती श्रीशंकरके चरणोंमें सुमन-अर्घ्य दे रही थी कि कामदेव अपने सहचर वसन्तको लेकर पहुँचा। उसने पुष्प-बाणको चढ़ाकर चाहा कि भगवान् शंकरको निशाना बनावें कि इतनेमें महादेवकी समाधि टूटी और उन्होंने सामने कामदेवको पुष्प-बाण चढ़ाते हुए देखा। यह देखना ही था और उधर देवता अन्तरिक्षमें यह कहनेहीको थे कि 'प्रभो! क्रोधको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये' कि इतनेमें शंकरका तीसरा नेत्र खुला और कामदेव जलकर भस्म हो गया। तभीसे शिवका 'कामारि', 'मदनरिपु' आदि नाम पड़ा।

७—गुणनिधि-उद्धार—

गुणनिधि नामका एक ब्राह्मण बड़ा चोर था। वह एक दिन किसी शिव-मन्दिरमें सोनेके घंटेको चुरानेके लिये गया। घंटा कुछ ऊँचे था और वह आसानीसे वहाँतक पहुँच न पाता था; इसलिये वह शिवलिंगपर चढ़ गया। इतनेमें भोलेबाबा वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'वर माँग, हम तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तूने आज मुझपर अपना सब कुछ चढ़ा दिया है।' भगवान् शंकरकी कृपासे गुणनिधि शिवलोकका अधिकारी हुआ।

१०—हरिचरण-पूत—गंगा—

एक बार विष्णुभगवान् वामनरूप धारण कर राजा बलिके द्वार गये और उससे उन्होंने तीन पग पृथ्वी दानमें माँगी तथा दानमें प्राप्त तीन पग पृथ्वी नापनेके लिये अपना विशाल ब्रह्माण्डव्यापी शरीर बनाया। उस समय ब्रह्माजीने भगवान्के उन चरणोंको धोकर अपने कमण्डलुमें रख लिया था, वही जल गंगाके प्रवाहके रूपमें अवतरित हुआ। इसी कारण गंगाको 'हरिचरण-पूत' कहा गया है।

१२—पाथोधि-घटसंभव—

समुद्रके किनारे एक जोड़ा टिटिहरीका रहता था। उनके अंडे समुद्र बराबर बहा ले जाता था। सन्तान-वियोगसे एक बार उनको समुद्रके ऊपर क्रोध हो आया और अपने चोंचमें बालू भर-भरकर वे लगे समुद्रको भरनेकी चेष्टा करने। उसी अवसरपर अगस्त्य ऋषि कहींसे वहाँ आ निकले और पक्षियोंकी आर्त्तदशाको देखकर उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। उन्होंने तत्काल ही उन्हें सान्त्वना देते हुए समुद्रको उठाकर 'ॐ राम' मन्त्रका उच्चारण तीन बार करते हुए आचमन कर लिया।

१५—असुर-नाशिनी—

मार्कण्डेयपुराणमें महिषासुर, चण्ड-मुण्ड और शुम्भ-निशुम्भ नामक प्रबल पराक्रमी तथा घोर कर्म करनेवाले दैत्योंकी कथा मिलती है। इनसे एक बार जब त्रिलोकी त्रस्त होकर त्राण पानेके लिये अति व्याकुल हो उठी, तब सब देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेशके साथ भगवती महामाया आदिशक्तिकी स्तुतिकर आह्वान किया। महामायाने प्रकट होकर इन असुरोंका संहारकर त्रिलोकीकी प्रजाके दुःखको दूरकर देवताओंको निर्भय किया।

१७—भगीरथ-नंदिनी—

सूर्यवंशमें सगर नामके महाऐश्वर्यशाली राजा हो गये हैं, उन्होंने ही समुद्रको खनवाया था, जिससे उसका नाम सागर पड़ा। महाराज सगरकी दो रानियाँ थीं। एकसे अंशुमान् पैदा हुए और दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज सगरके प्रतापसे देवराज इन्द्र बहुत ही भयभीत रहता था और उनसे ईर्ष्या किया

करता था। महाराज सगरके अश्वमेधयज्ञके स्वच्छन्द विचरनेवाले घोड़ेको उसने चुराकर योगेश्वर कपिलमुनिके आश्रमपर बाँध दिया। उसे खोजनेके लिये सगरके साठ हजार पुत्र निकले और मुनिके आश्रमपर घोड़ेको बँधा देख उन्हें कुवाच्य कहा। इससे क्रोधित हो मुनिने योगबलसे उन्हें भस्म कर दिया। महाराज अंशुमान्के पौत्र भगीरथ हुए, उन्होंने महातप करके पतितपावनी श्रीगंगाजीको भूतलपर लाकर उन लोगोंका उद्धार किया। इसीसे श्रीगंगाजीको 'भागीरथी' या 'भगीरथ-नन्दिनी' आदि नामोंसे पुकारते हैं।

१७—जह्नु-बालिका—

जब महाराज भगीरथ गंगाजीको अपने रथके पीछे-पीछे भूलोकमें ला रहे थे, उस समय गंगाका प्रवाह जह्नु मुनिके आश्रमसे होकर निकला। मुनि ध्यानावस्थित थे, प्रवाहको आते देख उन्होंने उसे उठाकर पी लिया। पीछे महाराज भगीरथने उनकी स्तुतिकर उनको प्रसन्न किया। तब मुनिने जगत्के हितार्थ गंगाजीको अपने जंघेसे निकाल दिया। तभीसे गंगाजीका नाम 'जह्नु-सुता', 'जाह्नवी' पड़ा।

१८—त्रिपुरारिसिरधामिनी—

जब महाराज भगीरथने ब्रह्मलोकसे गंगाजीको प्राप्त कर लिया, तब यह कठिनाई सामने आयी कि यदि गंगाजीकी धारा वहाँसे सीधे भूलोकपर गिरेगी तो उससे भूलोक जलमग्न हो जायगा। इसलिये उन्होंने भव-भय-हारी भगवान् शंकरकी स्तुति की और शंकरजीने ब्रह्मलोकसे अवतरित होती हुई गंगाकी धाराको अपने जटाजालमें रोक लिया। इसीसे श्रीगंगाजीको त्रिपुरारि (शिव)-के मस्तकमें निवास करनेवाली कहा जाता है।

२२—करनघंट—

काशीमें एक ब्राह्मण शिवका बड़ा ही अनन्य भक्त था। वह शिवके सिवा और किसी देवताका नाम भी नहीं सुनना चाहता था। इसलिये उसने अपने दोनों कानोंमें दो घण्टे लटका रखे थे जिससे किसी दूसरे देवताका नाम कानोंमें न आने पावे। कोई मनुष्य यदि उसके सामने किसी अन्य देवताका नाम लेता तो वह घण्टा बजाते हुए दूर भाग जाता। इसी कारण उसका नाम 'करनघंट'

पड़ गया था। वह जिस स्थानपर रहता था वह स्थान आज भी कर्णघण्टाके नामसे पुकारा जाता है।

२४—बिधिहरिहर—जनमे—

चित्रकूटमें महर्षि अत्रि और उनकी परम साध्वी पतिव्रता स्त्री अनसूया रहती थी। दोनों पुरुष-स्त्रीने पुत्रकी कामनासे अति कठोर तप किया। और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों नामोंसे पुकार-पुकारकर भगवान्‌की स्तुति की, तब भगवान् तीनों रूपमें प्रकट हो गये और वर माँगनेके लिये कहा। अनसूयाने यह वर माँगा कि मेरे गर्भसे तुम्हारे समान पुत्र हों। त्रिदेव 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। पीछे ब्रह्माने चन्द्रमाके रूपमें, विष्णुने दत्तात्रेयके रूपमें और शिवने दुर्वासाके रूपमें जन्म लिया।

२५—उदित चंड-कर-मंडल-ग्रासकर्त्ता—

वाल्मीकि-रामायणमें कथा आती है कि एक दिन प्रातःकाल अमावस्याके दिन हनुमान्‌जीको बहुत भूख लगी थी। उन्होंने उगते हुए लाल रंगके बाल-सूर्यको देखा और फल समझकर उनके ऊपर वे लपके, और एक ही झटकेमें पकड़कर निगल गये। दैवात् उस दिन ग्रहण भी था। बेचारा राहु जब सूर्यको ग्रहण करनेके लिये आया तो देखा चारों ओर अन्धकार है और सूर्यका कहीं पता नहीं। इससे निराश होकर वह इन्द्रके पास पहुँचा और गिड़गिड़ाने लगा कि आज मैं क्या खाऊँगा? सूर्यको तो किसी दूसरेने खा डाला। यह सुनकर इन्द्र राहुको साथ लिये दौड़े। श्रीहनुमान्‌जीने जब उन दोनोंको आते देखा तो वे उनको भी खानेके लिये लपके। इसपर इन्द्रने उनकी ठुड्डीपर ऐसा वज्र मारा कि हनुमान्‌जी मूर्छित हो गये और वज्र भी टूट गया। तभीसे महावीरजीका हनुमान् नाम पड़ा।

रुद्र-अवतार—

एक बार शिवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति की और यह वर माँगा कि 'हे प्रभो! मैं दास्यभावसे आपकी सेवा करना चाहता हूँ। इसलिये कृपया मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये। श्रीरामचन्द्रजीने 'तथास्तु' कहा। वही शिवजी

श्रीरामावतारमें हनुमान्‌जीके रूपमें अवतीर्ण होकर श्रीरामचन्द्रजीके सेवकोंमें प्रमुख पदको प्राप्त हुए।

सुग्रीव-ऋच्छादि-रच्छन-निपुन—

श्रीहनुमान्‌जीने सूर्यनारायणसे शस्त्रास्त्र-विद्याकी शिक्षा पायी थी। इसकी दक्षिणाके स्थानमें श्रीसूर्यनारायणने हनुमान्‌जीसे कहा था कि 'देखो, हमारे पुत्र सुग्रीवकी तुम सदा रक्षा करना।' हनुमान्‌जीने आजन्म सुग्रीवकी रक्षा की।

बालि बलसालि बध मुख्य हेतू—

सीता-हरणके बाद जब भगवान् श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ऋष्यमूक-पर्वतके समीप पहुँचे तो पहले हनुमान्‌जीने ही उनसे भेंट की तथा उनको ले जाकर सुग्रीवसे मिलाया और उनमें पारस्परिक मैत्री स्थापन की। यही मैत्री बालिवधका कारण हुई। इसीसे बालिके वधमें मुख्य हेतु श्रीहनुमान्‌जी माने जाते हैं।

सिंहिका-मद-मथन—

सिंहिका नामकी एक राक्षसी समुद्रमें रहती थी। उस मार्गसे जो जीव आकाशमें जाते थे, उनकी परछाईं जलमें देखकर वह उनको पकड़ लेती थी और खा जाती थी। जब हनुमान्‌जी सीताकी खोजमें आकाश-मार्गसे लंका जाने लगे तो उस राक्षसीने उनके साथ भी वही व्यवहार करना चाहा। परन्तु हनुमान्‌जी उसकी चालको समझ गये और उसको एक ही मुष्टि-प्रहारके द्वारा परलोक भेज दिया।

दसकंठ-घटकरन, बारिद-नाद-कदन-कारन—

राम-रावण-युद्धके समय जब रावण युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये अजेय यज्ञका अनुष्ठान करने लगा तो इसकी सूचना विभीषणने श्रीरामकी सेनामें दी और कहा कि यदि रावण इस अनुष्ठानमें सफल हो गया तो उसको मारना फिर अत्यन्त कठिन हो जायगा। इसलिये उसके यज्ञको विध्वंस करना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जीने इस कार्यका भार अपने ऊपर लिया और वे वानरोंकी एक सेना लेकर वहाँ पहुँच गये तथा उस यज्ञको विध्वंस कर दिया। इसके

पश्चात् रावण युद्ध-भूमिमें लड़नेके लिये आया और मारा गया। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी उसकी मृत्युके कारण बने। कुम्भकर्णको रणमें बलरहित करनेमें भी श्रीहनुमान्‌जी ही कारण थे।

मेघनादने जब लक्ष्मणजीको शक्तिबाण मारा था तो वे मूर्च्छित हो गये। उनकी मूर्च्छाको दूर करनेके लिये हनुमान्‌जी ही धौलागिरिके साथ संजीवनी-बूटी लाये थे और उस बूटीके द्वारा मूर्च्छासे उठनेपर दूसरे ही दिन लक्ष्मणजीने मेघनादको मारा था, इसी कारण श्रीहनुमान्‌जी मेघनादके वधके कारण माने जाते हैं।

कालनेमि-हंता—

यह रावणके पक्षका महाधूर्त राक्षस था। जब हनुमान्‌जी लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा हटानेके लिये संजीवनी-बूटी लाने गये थे तो रास्तेमें इसने साधुका वेष धारण कर उनको छलना चाहा। हनुमान्‌जीको उसकी माया मालूम हो गयी और तुरंत ही उन्होंने उसको परलोक भेज दिया। इसीसे हनुमान्‌जी कालनेमि-हन्ता कहलाते हैं।

२८—भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्वहर—

महाभारतमें कथा आती है कि पाण्डवोंके वनवासकालमें एक दिन भीम अपने पराक्रमके मदमें मस्त हुए कहीं जा रहे थे। उनके मार्गमें एक बड़ा भारी बंदर सोया हुआ मिला। भीमके गर्जनसे उसकी आँखें खुल गयीं। भीमने उसे मार्गसे हट जानेके लिये कहा। बंदरने उत्तर दिया—'भाई! मैं बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हीं जरा मेरी पूँछको हटाकर चले जाओ।' भीमके सारी शक्ति लगानेपर भी वह पूँछ टस-से-मस नहीं हुई। पीछे जब उन्हें यह मालूम हुआ कि यह कोई सामान्य बंदर नहीं है, बल्कि यह महापराक्रमशाली हनुमान्‌जी हैं तो उन्होंने नतशिर हो उन्हें प्रणाम किया और क्षमा माँगी। तत्पश्चात् भीमने हनुमान्‌जीसे निवेदन किया कि आप मुझे उस रूपका दर्शन दें जिस रूपसे आपने राम-रावण-युद्धमें भाग लिया था। हनुमान्‌जीने कहा कि मेरा वह रूप अत्यन्त ही विकराल है, उसे देखकर तुम डर जाओगे। परन्तु जब गर्वके साथ भीमने बहुत आग्रह किया तो हनुमान्‌जी तत्काल ही उस रूपमें प्रकट हो गये। भीमकी

आँखें भयके मारे बंद हो गयीं और वे थर-थर काँपने लगे। हनुमान्‌जीकी महिमा देखकर उनका गर्व दूर हो गया और वे उनके चरणोंमें गिर पड़े।

महाभारतके युद्धमें अर्जुनके रथकी ध्वजापर हनुमान्‌जी बैठे रहते थे। परन्तु यह बात अर्जुनको मालूम न थी। जब अर्जुन और कर्णका सामना हुआ तो अर्जुनके बाणसे कर्णका रथ बहुत दूर चला जाता था परन्तु कर्णके बाणसे अर्जुनका रथ बहुत ही थोड़ा हटता था। तथापि भगवान् अर्जुनके बाणकी प्रशंसा नहीं करते और कर्णके बाणकी प्रशंसा करते थे। इससे अर्जुनके दिलमें यह गर्व होता था कि भगवान् ऐसा क्यों कहते हैं। अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण यह सब जानते थे। एक बार उन्होंने हनुमान्‌जीसे रथकी ध्वजासे अलग हो जानेका इशारा किया। उनके हटते ही जैसे कर्णका बाण छूटा, अर्जुनका रथ कोसों दूर जा गिरा। इससे अर्जुनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने भगवान्‌से इसका कारण पूछा। भगवान्‌ने बतलाया कि 'हनुमान्‌के पराक्रमसे ही तुम्हारा रथ स्थिर रहता है, वे रथकी ध्वजापरसे हट गये हैं। यदि मैं भी यहाँ न रहता तो न जाने तुम्हारा रथ कहाँ चला जाता।' भगवान्‌की इस बातसे अर्जुनका गर्व दूर हो गया।

गरुड़जीको अपने तेज चलनेपर बड़ा ही गर्व था। एक बार भगवान् श्रीकृष्णने श्रीहनुमान्‌जीको बहुत शीघ्र बुला लानेके लिये गरुड़को भेजा। गरुड़जी वहाँ गये और उन्होंने हनुमान्‌जीको साथ चलनेके लिये कहा। हनुमान्‌जी बोले, आप चलिये, मैं अभी आता हूँ, गरुड़ने समझा देरसे आवेंगे, इसलिये कहा, साथ ही चलिये, हनुमान्‌जी बोले, मैं राम-कृपासे आपसे आगे पहुँच जाऊँगा। इसपर गरुड़को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और वे खूब तेजीसे चले। भगवान्‌के सामने पहुँचनेपर वे क्या देखते हैं कि हनुमान्‌जी पहलेहीसे वहाँ विराजमान हैं। यह देखकर गरुड़जीका गर्व जाता रहा।

संपाति—

संपाति गीधराज जटायुके बड़े भाई थे। एक दिन दोनों भाई होड़ा-होड़ी सूर्यको छूनेके लिये आकाशमें उड़े। जटायु तो बुद्धिमान् थे, वे सूर्यके उत्तापके भयसे सूर्यमण्डलके समीप न जाकर लौट आये, परन्तु संपातिको

अपने पराक्रमका घमंड था, वे आगे बढ़ते ही गये और सूर्यके समीप पहुँचते ही उत्तप्त किरणोंसे उनके पंख झुलस गये और वे माल्यवान्-पर्वतपर धड़ामसे आ गिरे। फिर जब सुग्रीवकी आज्ञासे सीताजीकी खोजमें वानर और रीक्ष निकले और उस पर्वतपर पहुँचे तो संपातिने ही उन्हें सीताजीका पता बताया। हनुमान्‌जीकी कृपासे संपातिके पंख जम गये और उनके नेत्रोंमें ज्योति आ गयी तथा उन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हो गया।

२९—महानाटक-निपुन—

श्रीहनुमान्‌जी बड़े भारी विद्वान् और गायनाचार्य थे, सूर्यभगवान्‌से उन्होंने सब विद्याएँ पढ़ी थीं। कहा जाता है कि श्रीहनुमान्‌जीने एक महानाटक लिखकर श्रीराम-चरित्रका विस्तृत वर्णन किया था। परन्तु उसके सुननेका कोई अधिकारी न पाकर उसे उन्होंने समुद्रमें फेंक दिया। उसीके यत्र-तत्र बिखरे कुछ अंशोंको दामोदर मिश्रने संकलन करके वर्तमान 'हनुमन्नाटक' की रचना की है।

३९—संजीवनी-समय—

जब हनुमान्‌जी हिमालय-पर्वतसे संजीवनी-बूटी लेकर आकाश-मार्गसे अत्यन्त तीव्र गतिसे लौटे आ रहे थे उस समय भरतने उन्हें देखकर समझा कि कोई मायावी राक्षस जा रहा है। इसलिये उन्होंने एक बाण चलाया जो हनुमान्‌जीको लगा और वह हा राम! हा राम! कहते हुए जमीनपर गिर पड़े। 'राम' शब्द सुनकर भरतको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने दौड़कर हनुमान्‌जीको उठा हृदयसे लगा लिया। इसी समय उनकी बाण चलानेकी महिमा जाननेमें आयी।

४०—लवणासुर—

लवणासुर मथुराका अनाचारी प्रतापी असुर राजा था। इसके अत्याचारोंसे गौ, ब्राह्मण और तपस्वीजन त्राहि-त्राहि करने लगे। जब महाराजा श्रीरामचन्द्रजीके यहाँ उनकी फरियाद आयी तो शत्रुघ्नने महाराजसे लवणासुरको दण्ड देनेके लिये स्वयं जानेकी आज्ञा माँगी। और आज्ञा प्राप्त होनेपर मथुरा जाकर उन्होंने अपने प्रबल पराक्रमसे लवणासुरका नाश कर प्रजाको सुखी किया।

४३—रिषि-मख-पाल—

विश्वामित्रमुनिके आश्रमके समीप राक्षसोंने बहुत उत्पात मचा रखा था। वे तपस्यामें अनेकों प्रकारसे विघ्न डालते थे। उनके उपद्रवसे व्याकुल होकर विश्वामित्रमुनि अयोध्यामें महाराज दशरथके दरबारमें आये और महाराजसे अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीराम-लक्ष्मणको माँगा। महाराज अपने प्राणप्रिय पुत्रोंको पहले तो अलग करना नहीं चाहते थे, परन्तु महामुनि महर्षि वसिष्ठकी अनुमतिसे उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्रमुनिके सुपुर्द किया। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको साथ लेकर मुनिके यज्ञकी रक्षा की और ताड़का, सुबाहु प्रभृति राक्षसोंको, जो यज्ञ-ध्वंस किया करते थे, मार डाला।

मुनिबधू-पापहारी—

गौतम-ऋषिकी पत्नी अहल्या परम रूपवती थी। उसके सौन्दर्यको देखकर इन्द्रका मन मोहित हो गया और एक दिन सायंकाल जब गौतम-ऋषि सन्ध्या-वन्दनके निमित्त बाहर गये थे उसी समय इन्द्र गौतमका रूप धारण कर अहल्याके पास गया और उससे अपनी अभिलाषा प्रकट की। कुसमय समझकर पहले तो उसने अस्वीकार किया पर पीछे पति-आज्ञा समझकर उसने स्वीकार कर लिया। इतनेहीमें गौतम-ऋषि आ गये। उन्होंने योगदृष्टिसे सारा रहस्य जान लिया और क्रोधित होकर इन्द्रको शाप दिया कि 'जा तेरे सहस्र भग हो जायँ।' तथा अहल्याको शाप दिया कि 'तू पत्थरकी हो जा।' पीछे जब उनका क्रोध शान्त हुआ तो उन्होंने दोनोंके शापका इस प्रकार प्रतिकार बतलाया कि श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे अहल्याका उद्धार होगा और जब श्रीरामचन्द्रजी शिवके धनुषको तोड़ेंगे, उस समय इन्द्रके सहस्र भग सहस्र नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायँगे।'

काक-करतूति-फलदानि—

एक दिन चित्रकूटमें इन्द्रका पुत्र जयन्त श्रीरामचन्द्रजीका बल देखनेकी इच्छासे कौएका रूप धारण कर सीताजीके पैरोंमें चोंच मारकर भागा। श्रीरामचन्द्रजीने पैरोंसे रक्त प्रवाहित होते देख सींकके बाणसे उसे मारा। जयन्त भागने लगा और बाण उसके पीछे लगा। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भागता फिरा परन्तु कहीं

भी उसे शरण नहीं मिली। लाचार होकर वह श्रीरामचन्द्रजीके शरणमें आ गिरा। भगवान्‌ने उसके प्राण तो नहीं लिये पर उसकी एक आँख ले ली।

४९—कालिय—

यमुनाजीमें एक बड़ा ही भयंकर सर्प रहता था। उसका नाम कालिय था। उसके विषके मारे वहाँका जल सदा खौलता रहता था। श्रीकृष्णभगवान्‌ने उसके मस्तकोंपर नृत्य करके उसे वहाँसे हटनेके लिये विवश कर दिया। पीछे वह यमुनाजीको छोड़कर समुद्रमें चला गया। यह कथा श्रीमद्भागवतमें मिलती है।

अंधक—

अन्धक बड़ा उपद्रवी और बलवान् दैत्य था। यह हिरण्याक्षका पुत्र था। ब्रह्माजीकी आराधना करके इसने यह वरदान प्राप्त किया था कि 'जब मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हो जाय तब ही मेरा शरीरान्त हो, नहीं तो मैं सदा जीता रहूँ।' यह वरदान प्राप्त कर उसने त्रिलोकीको जीत लिया। उसके भयसे देवता मन्दराचल-पर्वतपर चले गये। यह वहाँ भी पहुँचकर उनको त्रसित करने लगा। इसपर देवता त्राहि-त्राहि करने लगे और आर्तस्वरसे उन्होंने महादेवजीको पुकारा। महादेवजीके साथ अन्धकासुरका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, अन्तमें महादेवजीने उसे एक त्रिशूल मारा। जिससे वह असुर वहीं बैठकर महादेवजीके ध्यानमें मग्न हो गया। महादेवजीने कहा कि 'वर माँग।' उसने यह वर माँगा कि 'हे प्रभो! मुझे आपकी अनन्य भक्ति प्राप्त हो।' यह कथा 'शिवपुराण' में है।

दच्छ-मख—

दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम सती था, इनका विवाह शिवजीके साथ हुआ था। एक बार ब्रह्माजीकी सभामें सब देवता विराजमान थे, वहाँ दक्ष प्रजापति पहुँचे। उनकी अभ्यर्थनाके लिये समस्त देवता उठ खड़े हुए, परन्तु ब्रह्माजीके साथ शिवजी बैठे ही रह गये। इससे दक्ष प्रजापतिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने इसका बदला लेनेके उद्देश्यसे एक यज्ञ किया। उस यज्ञमें शिवजीके अतिरिक्त सब देवता बुलाये गये। जब यह समाचार सतीको मिला तो वह शिवजीकी अनुमतिके बिना ही अपने पिताके घर चली गयी और

वहाँ पहुँचकर जब यज्ञमें शिवजीका भाग उसने न देखा तो क्रोधके मारे योगाग्निमें जलकर भस्म हो गयी। यह समाचार सुनकर शिवजीने वीरभद्रको यज्ञ-विध्वंस करनेके लिये भेजा। वीरभद्रने वहाँ जाकर यज्ञ-विध्वंस किया।

५४—वेदगर्भ ...... कर्ता—

ब्रह्माजीके पुत्र सनकादिने एक बार अपने पितासे पराविद्यासम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछे। जब ब्रह्माजी उन प्रश्नोंका यथेष्ट उत्तर न दे सके तो उन्हें अपने ज्ञानपर बड़ा गर्व हुआ। ब्रह्माजीने उनके हृदयकी बात जानकर श्रीविष्णुभगवान्का स्मरण किया और विष्णुभगवान् वहाँ शीघ्र ही हंसके रूपमें प्रकट हो गये। फिर सनकादिने उस हंससे पूछा कि 'तू कौन है ?' इसी प्रश्नपर हंसभगवान्ने सारी पराविद्याका सारांश कह सुनाया। उसे सुनकर सनकादिका अभिमान जाता रहा। निम्बार्क-सम्प्रदायवाले इसी हंसभगवान्को अपने सम्प्रदायका आदि आचार्य मानते हैं।

५६—भूमि-उद्धरन—

सत्ययुगमें हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो महाप्रतापी असुर हो गये हैं। यह दोनों भाई थे। हिरण्याक्ष भूमिको चुराकर पातालमें ले गया। भगवान्ने शूकर-रूप धारण कर हिरण्याक्षको मारा और भूमिका उद्धार किया। इससे भगवान् भूमिके उद्धारक माने जाते हैं। इसके सिवा जब-जब इस पृथ्वीपर पापियोंका अत्याचार बढ़ता है और पृथ्वी घबड़ा उठती है तब-तब भगवान् अवतार लेकर पापियोंका नाश कर भूमिका उद्धार करते हैं।

भूधरनधारी—

यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि जब भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे व्रजवासियोंने इन्द्रकी पूजा रोक दी तो इन्द्र व्याकुल होकर प्रलयमेघको लेकर व्रजपर चढ़ आये। सात दिनतक लगातार मूसलाधार वृष्टि होती रही। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने गौओं और गोपियोंकी रक्षाके लिये गोवर्धनपर्वतको कनिष्ठिका-अँगुलीपर उठाकर उसको छाता बनाकर व्रजकी रक्षा की थी। तभीसे भगवान् 'भूधरनधारी' (गिरिधारी) नामसे पुकारे जाते हैं।

५७—वृत्रासुर—

वृत्रासुर बड़ा प्रतापी असुर था। यह असुर होते हुए भी परम भक्त था। इसने इन्द्रके साथ युद्ध करते समय भक्तिका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। भागवतमें यह प्रसंग देखने लायक है। इसीके मारनेके लिये देवगण दधीचि-ऋषिके पास उनकी हड्डियाँ माँगने गये थे और उस परम दानी ऋषिने देवोंके उपकारमें अपने शरीरका त्याग किया था। उन्हीं हड्डियोंमेंसे एकसे वज्र बना था जो इन्द्रका प्रमुख अस्त्र है। उसी वज्रसे इन्द्रने वृत्रको मारा था।

बान—

वाणासुर राजा बलिका पुत्र था। इसके सहस्र बाहु थे। यह शिवजीका परम भक्त था। इसकी पुत्री ऊषा परम सुन्दरी थी। वह स्वप्नमें श्रीकृष्णभगवान्‌के पौत्र अनिरुद्धका रूप देखकर मोहित हो गयी और अपनी सखी चित्रलेखाके चित्रोंद्वारा उसका पता जानकर उसे चुपकेसे अपने अन्तःपुरमें मँगा लिया। जब यह बात वाणासुरको मालूम हुई तो उसने अनिरुद्धको कैद कर लिया। इसपर वाणासुर और भगवान् श्रीकृष्णमें बड़ा घोर युद्ध हुआ। शिवजी वाणासुरकी ओरसे इस युद्धमें लड़ रहे थे। जब वाणासुरके सब बाहु कट गये, केवल चार ही बच रहे तब वह भगवद्भक्त हो गया। शिवजीके स्तवनसे भगवान्‌ने उसे अभय कर दिया। तत्पश्चात् अनिरुद्ध और ऊषाका विवाह हुआ। यह कथा भी श्रीमद्भागवतमें आती है।

मय—

मय नामक दानव बड़ा ही कला-कुशल था। इसके कलाकी प्रशंसा महाभारत, रामायण आदि धर्म-ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र मिलती है। स्वर्णपुरी लंकाका निर्माण इसीने किया था। महाभारतमें इन्द्रप्रस्थके अपूर्व नगरका निर्माता भी यही मय दानव था। यह भगवद्भक्त था।

द्विजबंधु—

द्विजबंधुका अभिप्राय अजामिलसे है। यह बड़ा ही दुराचारी और महापातकी ब्राह्मण था। इसके छोटे लड़केका नाम नारायण था। जब मरते

समय यमदूत इसे मुश्कें बाँधने लगे तो यह भयभीत होकर आर्त्तस्वरसे 'नारायण-नारायण' पुकारने लगा। इस पुकारसे उसका पुत्र तो नहीं आया, पर भगवान् नारायणके दूत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने हठपूर्वक यमदूतोंसे यह कहकर उसका पिण्ड छुड़ाया कि 'यह परम वैष्णव है, इसने बड़े ही आर्त्तस्वरसे भगवान्का नामोच्चारण किया है।'

६०—मारकंडेय……प्रलयकारी—

मार्कण्डेय-ऋषि बचपनसे ही बड़े वीर्यवान् और तपोनिष्ठ थे। उनकी उग्र तपस्याको देखकर इन्द्र भी भयभीत हो गये थे और उसमें विघ्न उपस्थित करनेके विचारसे कामदेवको अपनी सारी सेनाके साथ भेजा था। परन्तु कामदेव कोटि कला करके भी अपने प्रयत्नमें सफल नहीं हुए। इसके बाद भगवान् नर-नारायणरूपसे उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उनसे वर माँगनेके लिये कहा। मार्कण्डेयमुनिने भगवान्की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की। फलस्वरूप उन्हें सारा ब्रह्माण्ड जलमग्न होते हुए दिखलायी दिया।

७८—बिटप—

एक बार कुबेरके पुत्र नलकूबर और मणिग्रीवने प्रमादवश नारदजीकी उपेक्षा कर दी। इसपर नारदजीने उन्हें शाप दिया कि 'तुमलोग बड़े ही जडबुद्धि हो, जाओ वृक्ष हो जाओ।' पीछे जब उन लोगोंने प्रार्थना की तब दयालु नारदमुनिने शापोद्धारनिमित्त कह दिया कि 'गोकुलमें जब भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होगा तो उनके चरणोंके स्पर्शसे तुम्हारा उद्धार हो जायगा।' यह दोनों भाई नारदके शापसे गोकुलमें अर्जुन-वृक्ष बन गये। एक दिन यशोदाजीने किसी अपराधके कारण बालक श्रीकृष्णको ऊखलसे बाँध दिया। (भगवान् रेंगते हुए, जुड़े हुए वृक्षोंके पास जा पहुँचे और वृक्षोंको, बीचमें ऊखलको अड़ाकर ऐसा झटका दिया कि तुरंत दोनों वृक्ष गिर पड़े और वृक्ष-रूप त्यागकर दिव्य यक्षरूपसे भगवान्की स्तुति करने लगे। भगवान्ने उन्हें मुक्ति प्रदान कर दी।

८३—तर्‍यो गयंद जाके एक नाँय—

एक बार एक तालाबमें एक बड़ा भारी मतवाला हाथी हथिनियोंके साथ जलविहार कर रहा था। इतनेमें एक ग्राहने आकर उसका पैर पकड़ लिया।

हाथीने अपने पैरको छुड़ानेके लिये सारी शक्ति लगा दी पर ग्राहने पैर न छोड़ा, न छोड़ा। वह उसे गहरे जलमें खींचने लगा। जब वह हाथी निराश हो गया तो उसने आर्त्तभावसे भगवान्‌को पुकारा। उसके मुँहसे 'हरि' नाम निकलना था कि भक्त-भयहारी प्रभु अपने वाहन गरुड़को छोड़कर शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने ग्राहको मारकर उस हाथीके दुःखको दूर किया। श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धमें यह कथा 'गजेन्द्रमोक्ष' नामसे विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।

८६—सुरुचि—

राजा उत्तानपादकी दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। राजा सुरुचिको ही अधिक मानते थे। दोनों रानियोंके दो पुत्र थे। एक दिन सुनीतिका पुत्र ध्रुव सुरुचिके लड़केके सामने राजाकी गोदमें जा बैठा। सुरुचिसे यह देखा न गया। वह दौड़ी आयी और उसको डाँट-फटकार बताते राजाकी गोदसे उतार दिया। वह रोता हुआ अपनी माँके पास गया। उसकी माँने दीनबन्धु अशरणशरण भगवान्‌के गुणोंका वर्णन कर ध्रुवके मनको भगवान्‌की ओर लगा दिया। पीछे बालक ध्रुवने बाल्य-जीवनमें ही घोर तपस्या कर प्रभुको प्रसन्न कर राज्य और परमपद प्राप्त किया।

८७—रिपु राहु—

जब समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे अमृत निकला तो दैत्य और देवता उसके लिये आपसमें लड़ने लगे। विष्णुभगवान्‌ने मोहिनी-रूप धारण कर अमृतके घड़ेको अपने हाथमें ले लिया। दैत्य उनके रूपपर मोहित हो गये, उन्हें अमृतका ध्यान ही नहीं रहा। एक ओर देवता और दूसरी ओर दैत्य बैठ गये। अमृतका बाँटा जाना देवताओंकी पंक्तिसे प्रारम्भ हुआ। राहु नामका दैत्य विष्णुभगवान्‌की इस लीलाको समझ गया। वह वेष बदलकर सूर्य-चन्द्रमाके बीच देवताओंमें आकर बैठ गया। मोहिनीने उसे भी अमृत पिला दिया, वह अमर हो गया। परन्तु सूर्य और चन्द्रमाके संकेतसे भगवान्‌को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने अपने चक्रसे राहुके सिरको धड़से अलग कर दिया। फिर सिर राहु हो गया और धड़ केतु। उसी पुराने वैरसे राहु ग्रहणके द्वारा चन्द्र और सूर्यको कष्ट देता है।

मृगराज-मनुज—

प्रह्लादकी कथा प्रसिद्ध ही है। हिरण्यकशिपु नामका एक महाप्रतापी दैत्य हो गया है। उसने घोर तप करके ब्रह्मासे यह वरदान माँगा था कि मैं न नरसे मरूँ न पशुसे, न दिनमें मरूँ न रातमें, न अस्त्रसे मरूँ न शस्त्रसे, न घरमें मरूँ न बाहर। यह वर प्राप्त कर वह अत्यन्त निरंकुश होकर राज्य करने लगा। उसके अत्याचारसे त्रिलोकी काँप उठी। कोई भी मनुष्य जप-यज्ञ, पूजा-पाठ उसके राज्यमें नहीं करने पाता था और जो कोई भगवद्भजन करता उसे वह तरह-तरहकी यन्त्रणा देता। उसका पुत्र प्रह्लाद बड़ा ही भगवद्भक्त था। उसने पिताके कितना ही कहनेपर भी अपनी टेकको नहीं छोड़ा। इसके लिये उसे भाँति-भाँतिकी पीड़ा पहुँचानेका प्रयत्न किया गया। परन्तु सब निष्फल हुआ। एक दिन राजसभामें प्रह्लादको खम्भेमें बाँधकर हिरण्यकशिपु कहने लगा कि 'अपने भगवान्‌को दिखला, नहीं तो आज तू मेरे तलवारकी घाट उतरेगा।' प्रह्लादने कहा कि 'भगवान् सर्वत्र है, वह खम्भेमें है, तुममें है, मुझमें है, तुम्हारी तलवारमें और इस खम्भेमें भी है।' इसपर हिरण्यकशिपुने अत्यन्त क्रोधित होकर उसे मारनेके लिये तलवार उठायी ही थी कि भक्त प्रह्लादके वचनको सत्य करने और उसे संकटसे छुड़ानेके लिये भगवान् नरसिंह (आधा मनुष्य और आधा सिंह)-रूपसे खम्भेको फाड़कर निकल आये और हिरण्यकशिपुको दरवाजेपर घसीटकर अपने जंघेपर रखकर अपने नखोंसे उसके कलेजेको फाड़कर मार डाला।

नर-नारी—

जब दुर्योधनने जुएमें पाण्डवोंका सर्वस्व जीत लिया और अन्तमें द्रौपदीको भी दाँवपर रखकर जब पाण्डव हार गये, तब उसने दुःशासनके द्वारा द्रौपदीको भरी हुई राजसभामें बुलवाकर नंगा करनेकी आज्ञा दी। उस सभामें भीष्म, द्रोण आदि महामहिम योद्धा तथा पाँचों भाई पाण्डव भी बैठे थे, परन्तु दुर्योधनकी इस आज्ञापर किसीके मुँहसे एक भी शब्द न निकला। दुःशासन द्रौपदीके सिरके केशोंको पकड़कर घसीटता हुआ सभा-मण्डपके बीचमें लाया और उसकी साड़ीको पकड़कर खींचने लगा। दौपदीने करुणापूर्ण नेत्रोंसे सभाकी ओर देखा परन्तु जब कोई भी उसकी सहायताके

लिये आगे बढ़ता न दिखायी दिया तो उसने अपनी लाज बचानेके लिये आर्त्तस्वरसे करुणासिन्धु भगवान्‌को पुकारा। भगवान् श्रीकृष्णने उसकी पुकार सुन ली। (कुरुराज-बन्धु) दु:शासन साड़ीको खींचते-खींचते थक गया परन्तु उसका छोर न लगा। प्रभुकी कृपाके आगे उसकी एक न चली। द्रौपदीकी लाज रह गयी। अर्जुन 'नर' ऋषिके अवतार माने जाते थे, इससे द्रौपदीको 'नर-नारी' कहा गया है।

१४—गनिका—

पिंगला नामकी एक वेश्या थी। एक दिन जब वह शृंगार किये हुए अपने किसी प्रेमीकी प्रतीक्षामें बैठी और आधी राततक वह न आया तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगी कि जितना समय मैंने इस पापपूर्ण प्रतीक्षामें लगाया उतना यदि भगवान्‌के भजनमें लगाती तो मेरा उद्धार हो जाता। उसी दिनसे उसने वेश्या-वृत्ति छोड़कर भगवद्भजनमें मन लगाया और भगवान्‌की कृपासे उसका उद्धार हो गया।

ब्याध—

प्राचीन कालमें रत्नाकर नामका एक व्याध था। वह ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर भी व्याधका काम करता था। वह जंगलमें पशुओंका शिकार करनेके सिवा वनके मार्गसे होकर जानेवालोंका सर्वस्व भी छीन लेता था। एक दिन, दैववश, देवर्षि नारद उसी मार्गसे होकर निकले। रत्नाकरने उनको घेर लिया। नारदजीने उससे कहा कि तुम यह घोर कर्म जिनके लिये कर रहे हो, वह तुम्हारे इस पापकर्मके भागी न होंगे। रत्नाकर इसपर अपने कुटुम्बके लोगोंसे इस विषयमें पूछनेके लिये गया। जब उसके परिवारके लोगोंने साफ-साफ कह दिया कि हम तुम्हारे पापके भागी नहीं हैं तो वह नारदजीके पास आकर उनके पैरोंमें गिर पड़ा और क्षमा-याचना करते हुए पूछा कि 'मेरा अब कैसे उद्धार होगा?' नारदजीने उसे 'राम' मन्त्रका उपदेश दिया। उसने कहा कि मैं राम-मन्त्र नहीं जप सकता, तब देवर्षिने उससे रामका उलटा 'मरा-मरा' जपनेको कहा। इसीके प्रतापसे पीछे वही व्याध 'वाल्मीकि' मुनिके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

१७—सुरपति कुरुराज, बालिसों ······· बैर बिसहते—

सुरपति—

एक बार देवर्षि नारदजी स्वर्गसे पारिजात-पुष्प लाकर रुक्मिणीको दे गये। सत्यभामाको उसके लेनेकी इच्छा हुई। परन्तु सौत होनेके कारण रुक्मिणीसे वह माँग नहीं सकती थी और रुक्मिणीके पास वैसे पुष्पका होना भी उससे देखा नहीं जाता था; इसलिये उसने पारिजात-पुष्पके लिये मान किया। यद्यपि उसका यह हठ और मान ईर्ष्यायुक्त होनेके कारण अनुचित था, परन्तु भगवान्‌ने भक्तिवश उसपर कुछ ध्यान न दिया और स्वर्गमें जाकर इन्द्रसे लड़कर पारिजात-वृक्ष ही उखाड़ लाये और सत्यभामाके भवनके सामने बगीचेमें उसे लगा दिया।

कुरुराज—

पाँचों भाई पाण्डवोंका मिलकर द्रौपदीको रख लेना, कौरवोंके साथ जुआ खेलना तथा द्रौपदीको भी दाँवपर रख हार जाना आदि पाण्डवोंके प्रत्यक्ष दोष थे, परन्तु उनकी भक्ति देखकर भगवान् कृष्णने उनके दोषोंपर ध्यान नहीं दिया और उनका पक्ष लेकर कुरुराज दुर्योधनसे वैर बाँध लिया।

बालि—

यद्यपि सुग्रीवका भी पक्ष बिलकुल निर्दोष न था तथापि सुग्रीवकी भक्तिके वशमें होकर भगवान्‌ने इन बातोंका कुछ भी खयाल न करके बालिको मारा और सुग्रीवको राज्य दिलाया।

१८—जसुमति हठि बाँध्यो—

एक बार यशोदाजी दही मथ रही थीं। उसी समय बालक श्रीकृष्ण भूखे हुए उनके पास आये, माता उन्हें गोदमें उठाकर प्रेमसे दूध पिलाने लगी, इतनेमें चूल्हेपर चढ़े हुए पात्रमें दूधका उफान आ गया। यशोदाजी श्रीकृष्णको गोदसे नीचे उतारकर उस दूधके पात्रको उतारने लगीं। इससे बालक कृष्ण बहुत रूठ गये और उन्होंने दहीके मटकेको उलट दिया और दूसरे घरमें जाकर ऊखलपर चढ़कर माखन खाने लगे। माताने वापस आकर देखा कि दहीका बर्तन उलटा पड़ा है और श्रीकृष्णका पता नहीं है। वह क्रोधित हो

उठी और श्रीकृष्णको सजा देनेके लिये ढूँढ़ने लगी। जब वह उस घरमें पहुँची जहाँ कृष्ण मक्खन खा रहे थे तो कृष्ण माताकी मारके डरसे ऊखलसे उतरकर भागने लगे। माताने उनको पकड़ लिया और लगी रस्सीसे उन्हें ऊखलमें बाँधने। परन्तु जिस रस्सीसे वह बाँधना चाहती थी वही रस्सी छोटी हो जाती, यों तमाम घरभरकी रस्सी लाकर जोड़ दी परन्तु तिसपर भी श्रीकृष्ण न बँध सके। तब थककर उनकी ओर देखकर मुसकराने लगी। कृपामय भगवान् माताकी कठिनाईको देखकर स्वयं बँध गये।

अम्बरीष—

महाराज अम्बरीष परम भक्त थे, एकादशी-व्रतके बड़े ही प्रसिद्ध व्रती थे। एकादशीको दुर्वासा-ऋषि उनके घर आये। महाराजने उनको द्वादशीके दिन भोजन करनेका निमन्त्रण दिया, क्योंकि वह द्वादशीको ब्राह्मण-भोजन कराये बिना पारण नहीं करते थे। दुर्वासा-ऋषि स्नान-ध्यान करनेके लिये बाहर गये और उनको वहाँ बहुत देर हो गयी। द्वादशी थोड़ी ही थी, उसके बाद त्रयोदशी हो जाती थी और शास्त्रोंकी यह आज्ञा है कि एकादशी-व्रत करके द्वादशीको पारण करना चाहिये! ब्राह्मणोंकी आज्ञासे इस दोषके परिहारके लिये राजाने एक तुलसीका पत्ता ले लिया। इतनेमें दुर्वासा-ऋषि आ गये और बिना आज्ञा लिये हुए राजाके तुलसीदल ले लेनेपर वे आगबबूला हो गये और उन्होंने क्रोधित हो महाराजको शाप दिया कि 'तुझे जो यह घमंड है कि मैं इसी जन्ममें मुक्त हो जाऊँगा वह मिथ्या है, अभी तुम्हें दस बार और जन्म धारण करने पड़ेंगे।' इतना शाप देनेके बाद उन्होंने एक कृत्या नामक राक्षसीको पैदा किया, जो पैदा होते ही अम्बरीषको खानेके लिये दौड़ी। भक्तकी यह दुर्दशा भगवान्से देखी न गयी, उन्होंने शीघ्र सुदर्शन-चक्रको आज्ञा दी। उसने कृत्याको मारकर दुर्वासा-ऋषिका पीछा किया। दुर्वासाजी तीनों लोकोंमें भागते फिरे, पर किसीने उन्हें आश्रय नहीं दिया। अन्तमें वे भगवान् विष्णुके पास गये और उनकी आज्ञासे लौटकर महाराज अम्बरीषके चरणोंपर आ गिरे। राजाने चक्रको स्तवन करके शान्त किया। इसके बाद विष्णुभगवान्ने प्रकट होकर दुर्वासा-ऋषिसे कहा कि आपने हमारे भक्तको शाप दिया है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। उनके बदलेमें मैं दस बार शरीर धारण करूँगा।

उग्रसेन—

कंसके पिताका नाम उग्रसेन था। कंस अपने पिताको कैद करके आप राजगद्दीपर बैठा था। उसके अत्याचारोंसे प्रजा त्राहि-त्राहि करती थी। भगवान् कृष्णने कंसको मारकर उग्रसेनको पुनः गद्दीपर बैठाया और आप स्वयं उनके द्वारपाल बने।

९९—सुदामा—

सुदामाकी कथा प्रसिद्ध ही है। वह श्रीकृष्णजीके सहपाठी मित्र थे। विद्याध्ययनके अनन्तर यह अत्यन्त दरिद्र हो गये। अपनी स्त्रीके कहने-सुननेपर यह भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारका गये। यह इतने दरिद्र थे कि अपने मित्रसे मिलनेके लिये चार मुट्ठी चावल भेंट ले गये थे। भगवान्ने इनका बड़ा ही सम्मान किया और चार मुट्ठी चावलके बदलेमें उन्हें पूर्ण समृद्धिशाली बना दिया।

१०६—केवट—

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ वन जाते समय गंगाके किनारे पहुँचे और पार जानेके लिये केवटसे नाव माँगी तो उसने प्रेमसे गद्गद होकर कहा—'हे स्वामिन्! मैं आपके मर्मको जानता हूँ। आपके चरणोंको छू करके पत्थर सुन्दर स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। मेरी नाव तो काठकी है, कहीं यह भी मुनिकी स्त्री बन जायगी तो मेरी जीविका ही जाती रहेगी। इसलिये यदि आप पार जाना चाहते हैं तो पहले अपना पैर धोने दीजिये।' निषादकी भक्ति अपूर्व थी। उसकी भक्तिके ही कारण भगवान्ने उससे अपने चरण धुलाकर कृतार्थ किया।

शबरी—

यह जातिकी भीलनी थी। मतंग-ऋषिकी सेवा करते-करते इसे भगवद्भक्तिकी प्राप्ति हो गयी थी। सीताहरणके पश्चात् जब लक्ष्मणजीके साथ भगवान् सीताकी खोजमें वनमें भटक रहे थे तो रास्तेमें भीलनीका आश्रम मिला। उसने भगवान्का बड़ा सत्कार किया तथा प्रेममें बेसुध होकर भगवान्को पहलेसे चख-चखकर देखे हुए पेड़ोंके सुन्दर बेर दिये और भक्तवत्सल भगवान्ने उन्हें सराह-सराहकर खाया। यह कथा प्रसिद्ध ही है।

गोपिका—

गोपियोंकी प्रेमाभक्ति प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमके वशीभूत हो गोपियोंके साथ रास किया था।

विदुर—

विदुर दासी-पुत्र थे। परन्तु श्रीकृष्णभगवान्‌में इनकी अपूर्व भक्ति थी। इसी कारण भगवान् जब हस्तिनापुर गये तो दुर्योधनके घर न जाकर विदुरके आतिथ्यको ही उन्होंने स्वीकार किया। जब भगवान् विदुरके घर पहुँचे उस समय विदुर घरपर नहीं थे। उनकी पत्नीने भगवान्‌का सत्कार किया। वह केले लेकर भगवान्‌को खिलाने बैठी परन्तु प्रेममें इतनी बेसुध थी कि केले छीलकर नीचे गिराती गयी और छिलके भगवान्‌के हाथमें। प्रेमके भिखारी भक्तहियहारी प्रभु उन्हीं छिलकोंको भोग लगाने लगे। भगवान्‌ने विदुरके कुल-शीलका विचार न कर उनकी भक्तिको ही प्रधानता दी। विदुरके साथ भगवान्‌का सख्यप्रेम था।

कुबरी—

यह कंसकी दासी थी। जब श्रीकृष्णभगवान् मथुरामें कंसके दरबारमें जा रहे थे तो वह रास्तेमें कंसके लिये चन्दनका अवलेप लिये जा रही थी। भगवान् श्रीकृष्णकी वह परम भक्ता थी। भगवान्‌ने उसके प्रेमके कारण उसके उस चन्दनके अवलेपको अपने शरीरमें लगाया और उसके कुबड़ेपनको दूर कर दिया। कंसको मारकर लौटनेपर भगवान्‌ने इसके आतिथ्यको स्वीकार किया था।

१२८—रक्तबीज—

यह एक महाप्रतापी दैत्य था। इसने घोर तपस्या करके श्रीशिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मेरे शरीरसे जो एक बूँद रक्त गिरे तो उससे सहस्त्रों रक्तबीज पैदा हों।' इस वरको प्राप्त कर इसने त्रिलोकीको भयसे कम्पित कर दिया था। सब देवताओंने अन्तमें मिलकर भगवती महाकालीकी स्तुति की। महाकाली प्रकट होकर रक्तबीजसे युद्ध करने लगी। परन्तु जब उसके एक बूँदसे सहस्त्रों रक्तबीज पैदा होने लगे तो महाकालीने अपनी जीभ

इतनी लम्बी बढ़ायी कि जितना रक्त उन रक्तबीज दैत्योंके बदनसे गिरता उसे ऊपर ही चाट जाती। इस प्रकार रक्तबीजका संहार उन्होंने किया। यह कथा दुर्गासप्तशतीमें विस्तारपूर्वक दी गयी है।

१४५—बिभीषन—

विभीषणने रावणको समझाया कि 'श्रीरामचन्द्रजी जगत्-पिता परमात्मा हैं और श्रीसीताजी जगज्जननी हैं। इसलिये तुम जगज्जननी श्रीसीताजीको उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँगो। वे प्रभु दयालु हैं, तुम्हें क्षमा कर देंगे।' इस बातको सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ और विभीषणको लात मारकर अपने नगरसे बाहर निकाल दिया। विभीषणने निराश और निराश्रय होकर मनमें कहा—

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

इस प्रकार अनन्यभावसे भावित होकर जब विभीषण भगवान्‌के चरणोंमें आ गिरा तो भगवान्‌ने उसे प्रेमसे लंकेश कहकर हृदयसे लगाया। प्रभुकी भक्तवत्सलताका यह कैसा उदाहरण है!

१६२—दस सीस अरपि—

प्रबल-प्रतापी राजा रावण एक बार कैलास-पर्वतपर जाकर तपस्या करने लगा। वह घोर तप करके अन्तमें अपने सिरको काट-काटकर अग्निमें हवन करने लगा। जब नव सिर काटकर हवन कर चुका और दसवाँ सिर काटनेके लिये खड्ग उठाया तब शंकरजी वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने उससे वर माँगनेके लिये कहा, फलस्वरूप उसे लंकाका राज्य मिला।

१७४—बलि—

जब राजा बलिने वामनभगवान्‌को तीन पग पृथ्वी दान देनेका वचन दे दिया तब शुक्राचार्यने उसको श्रीविष्णुभगवान्‌के छलके विषयमें बहुत कुछ समझाकर दान देनेसे रोका। परन्तु सत्यसंकल्प राजा बलि अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी न हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्यका सत्यके पीछे परित्याग कर दिया।

२१३—नृग—

सत्ययुगमें राजा नृग बड़े ही दानी राजा हो गये हैं। वह नित्य एक करोड़ गो-दान किया करते थे। एक बार एक ब्राह्मणको दान दी हुई गाय भूलसे आकर उनकी गायोंमें मिल गयी और उन्होंने उसे अपनी गायोंके साथ दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया। पहला ब्राह्मण अपनी भूली गायको तलाश करता हुआ जब दूसरे ब्राह्मणकी गायोंमें उसे चरते हुए देखा तो उस ब्राह्मणको चोर बताकर अपनी गाय हाँक ले चला। फिर दोनों ब्राह्मणोंमें झगड़ा होने लगा। दोनों लड़ते-झगड़ते राजाके पास पहुँचे और राजाको इंसाफ करनेके लिये कहा। राजा दोनोंकी बातें सुनकर सिर हिलाता रहा। कुछ उसके समझमें न आया कि क्या किया जाय! इसपर वे दोनों ब्राह्मण क्रोधित हो उठे, उन्होंने राजाको शाप दिया कि 'हे राजन्! तूने हमें धोखा दिया है, इसलिये जा, गिरगिटकी योनिको प्राप्त हो।' राजा गिरगिट हो गया और बेचारा सहस्रवर्षपर्यन्त द्वारकाके एक कुएँमें पड़ा रहा। श्रीकृष्णावतारमें भगवान्‌ने उसे कुएँसे निकाला। फिर शापमुक्त होकर वह दिव्य शरीर धारण कर वैकुण्ठ चला गया।

२१४—पूतना—

यह पूर्वजन्ममें एक अप्सरा थी। वामनभगवान्‌का बालस्वरूप देखकर, वात्सल्य-स्नेह-वश, इसकी इच्छा हुई थी कि मैं इस बालकको पुत्र बनाकर अपने स्तनोंका दूध पिलाती। अन्तर्यामी भगवान् उसकी मनोवाञ्छा जान गये। वह अप्सरा किसी घोर पापके कारण पूतना नाम्नी राक्षसी बनी। श्रीकृष्णावतारमें भगवान्‌ने वत्सवत् उसका स्तन्यपान करते हुए उसे अपने धाम भेज दिया।

सिसुपाल—

यह चेदि देशका राजा था। यह बड़ा ही पराक्रमी था। कहते हैं कि रावण ही दूसरे जन्ममें शिशुपाल हुआ। यह बड़ा दुष्ट था। प्रतिदिन सबेरे उठकर भगवान् श्रीकृष्णको सौ गालियाँ दिया करता था। भगवान् कृष्ण उसकी गालियाँ सुनते और सह लेते थे। क्योंकि उसकी माता श्रीकृष्णके पिताकी बहिन थी। और उसने श्रीकृष्णसे यह वर ले लिया था कि वह शिशुपालके सौ अपराधोंको प्रतिदिन क्षमा कर देंगे। एक दिन पाण्डवोंकी सभामें श्रीकृष्णको वह गालियाँ

देने लगा। सौ गालियोंतक तो भगवान्‌ने उसे क्षमा किया। परन्तु जब उसने गाली देना बंद नहीं किया तो भगवान्‌ने चक्रसुदर्शनसे उसके सिरको काट डाला। देखते-देखते उसकी आत्मज्योति भगवान्‌के श्रीमुखमें प्रवेश कर गयी।

व्याध—

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें पद्मके चिह्न देखकर उसे नेत्रका भ्रम हो गया था और उसने हरिण समझकर भगवान्‌के चरणोंमें तीर मारा था। पीछे जब वह समीप आया और चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्णको देखा तो उसे बड़ा ही दु:ख और पश्चात्ताप हुआ। परन्तु भगवान्‌ने उसे शान्ति प्रदान करते हुए सदेह स्वधामको भेज दिया।

२२०—परीछितहि पछिताय—

एक बार महाराज परीक्षित् शिकार खेलते-खेलते निर्जन वनमें निकल गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक काला पुरुष मूसल हाथमें लिये एक गाय और एक लँगड़े बैलको खदेड़ रहा है। जब पूछनेपर मालूम हुआ कि वह काला पुरुष कलियुग है और उसके भयसे पृथ्वी, गाय और धर्म बैलका रूप धारण कर भाग रहे हैं, तो महाराजने क्रोधित होकर तलवार निकाल ली और कलियुगको मारनेके लिये दौड़े। इसपर वह काला पुरुष भयभीत होकर महाराजके चरणोंपर गिर पड़ा। महाराजने उसे शरणागत जानकर छोड़ दिया और चौदह स्थानोंमें रहनेके लिये उसे अभय कर दिया। उन स्थानोंमें एक स्वर्ण भी था। महाराजके सिरपर सोनेका मुकुट था, इसलिये कलिने उसपर अपना आसन जमाया। महाराज जब उधरसे लौटे तो भूख-प्याससे व्याकुल हो एक ध्यानावस्थित ऋषिके आश्रममें पहुँचे और ऋषिको पुकारने लगे। जब कुछ उत्तर न मिला तो महाराज ऋषिको पाखण्डी समझकर उनके गलेमें एक मरा हुआ सर्प डालकर वहाँसे चले गये। जब उस ऋषिके पुत्रको यह समाचार मालूम हुआ तो उसने शाप दिया कि ध्यानावस्थित मेरे पिताके गलेमें मृत सर्प डालकर तिरस्कार करनेकी चेष्टा करनेवाला मदान्ध राजा आजसे सातवें दिन तक्षक सर्पके काटनेसे मर जायगा। महाराजा परीक्षित्‌को जब यह समाचार मालूम हुआ

तो उन्हें अपनी भूलपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह सात दिनतक श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ सुनकर सातवें दिन तक्षक सर्पके काटे जानेपर ब्रह्मलीन हो गये। यह कथा श्रीमद्भागवतमें लिखी है।

२२५—मृग—

मारीच रावणका अनुचर था। इसीको श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके समय एक ही बाणमें सौ योजन दूर समुद्रपार भेज दिया था। जब पंचवटीमें लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके नाक और कान काट लिये और वह विलखती हुई रावणके पास गयी तो रावणने बदला लेनेकी इच्छासे मारीचके पास जाकर उसे माया-मृग बनने और श्रीरामचन्द्रजीको धोखा देनेके लिये कहा। पहले तो मारीचने उसे बहुतेरा समझाया और श्रीरामचन्द्रजीसे मेल कर लेनेके लिये कहा। परन्तु जब रावण उसे मारनेके लिये तैयार हो गया तो उसने रावणके हाथसे मरनेकी अपेक्षा श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मरनेमें ही अपना श्रेय समझा। वह मायामृग बनकर पंचवटीमें भगवान्‌की पर्णकुटीके सामने होकर निकला। श्रीजानकीजीने भगवान्‌से उस मृगको मारकर उसका मृगछाला लानेके लिये कहा। भगवान् उसके पीछे चले और मृगके मरण-समयके आर्त्तनादको सुनकर श्रीजानकीजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजी भी उधर ही निकल पड़े। एकान्त देखकर रावण आया और पर्णकुटीसे श्रीसीताजीको रथपर बैठाकर लंका ले गया। मारीचको मारकर भगवान्‌ने उसे सद्‌गति प्रदान की।

२२६—नहिं कुंजरो नरो—

महाभारतके युद्धमें कौरवोंकी ओरसे लड़ते हुए द्रोणाचार्य जब पाण्डवोंकी सेनाका संहार करने लगे तब श्रीकृष्णभगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि अब तो द्रोणाचार्यका वध किये बिना काम नहीं चल सकता। परन्तु अर्जुनको गुरुवध करनेकी हिम्मत नहीं हुई। तब भगवान्‌ने भीमके द्वारा अश्वत्थामा नामके हाथीको मरवा डाला। द्रोणाचार्यके पुत्रका भी अश्वत्थामा नाम था और वह उनको बड़े ही प्यारे थे। जब 'अश्वत्थामा मारा गया' यह आवाज़ द्रोणाचार्यके कानोंमें पहुँची तो उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिरने कहा—'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा।' अर्थात् अश्वत्थामा मनुष्य मारा गया या हाथी। द्रोणाचार्य 'या हाथी'

(वा कुंजरो वा) इस अंशको न सुन सके। राजनीतिका पालन करते हुए धर्मराजने सत्यकी रक्षा करनी चाही, पर वह न हो सका। असत्य बोलनेका कलंक उनके जीवनपर लग ही गया। अस्तु, पुत्रमरण सुनकर ज्यों ही द्रोणाचार्य मूर्छित-से हुए त्यों ही धृष्टद्युम्नने उनका मस्तक काट लिया। 'नरो वा कुंजरो वा' तभीसे कहावतके रूपमें प्रयुक्त होने लगा।

२३९—ब्रह्म-बिसिख—

अश्वत्थामाने पाण्डवोंको निर्वंश करनेके लिये परीक्षित्‌को गर्भमें ही ब्रह्मास्त्रसे मारना चाहा था, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने चक्रसुदर्शनके द्वारा उसे बीचमें ही व्यर्थ करके गर्भस्थ शिशुकी रक्षा की थी।

फेन मर्‌यो—

नमुचि नामका एक महाप्रतापी दैत्य था। उसने घोर तपस्या करके ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि 'मैं न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, और न किसी शुष्क या आर्द्र पदार्थसे मरूँ।' जब देवासुर-संग्राम छिड़ा तो देवतालोग इसके पराक्रमके आगे त्राहि-त्राहि करने लगे। इन्द्रका वज्र भी इसका बाल बाँका न कर सका। तब आकाशवाणी हुई कि 'यह अस्त्र-शस्त्रसे नहीं मरेगा। इसे समुद्रके फेनसे मारो।' पीछे समुद्रके फेनसे मृत्यु हुई।

२४७—पूजियत गनराउ—

एक बार सब देवताओंमें इस बातके लिये झगड़ा उठा कि सबोंमें प्रथम पूज्य कौन है। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि समस्त ब्रह्माण्डकी परिक्रमा करके जो पहले आ जाय वही सर्वप्रथम पूज्य समझा जायगा। सब देवता अपने-अपने वाहनपर सवार होकर निकले। बेचारे गणेशजीकी सवारी चूहा! क्या करते? बड़े ही असमंजसमें पड़े! इतनेमें नारदजी उस रास्तेसे होकर निकले। गणेशजीको मनमारे बैठा देखकर उन्होंने कहा—किस चिन्तामें आप पड़े हैं, रामनाम लिखकर उसकी ही परिक्रमा करके निश्चिन्त हो जाइये। रामनाममें ही अखिल सृष्टि निहित है। फिर क्या था, गणेशजीने चट रामनाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर डाली और सबसे पहले ब्रह्माण्डकी परिक्रमा कर आनेके फलस्वरूप सर्वप्रथम पूज्य हो गये। यह रामनामकी महिमा है!

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाउ॥

रोक्यो बिंध्य—

कथा आती है कि विन्ध्याचल-पर्वत बहुत ही ऊँचा था। सूर्यकी प्रचण्ड किरणें जब उस पर्वतके आश्रय रहनेवाले वृक्ष-लताओंको झुलसाने लगीं तब उसे बड़ा रोष उत्पन्न हुआ और सूर्यनारायणको ढक लेनेके उद्देश्यसे वह अपने शरीरको बढ़ाने लगा। इससे सारे देवता भयभीत हो उठे और सबने आकर अगस्त्य-ऋषिसे प्रार्थना की। महर्षि अगस्त्यजीने राम-नामका स्मरण कर विन्ध्याचलके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि 'देख, जबतक मैं यहाँ न लौट आऊँ तबतक तू यहाँ ऐसा ही पड़ा रह।' अगस्त्यजी फिर न लौटे और वह पर्वत ज्यों-का-त्यों आजतक खड़ा है। यह है श्रीराम-नामकी महिमा!

२५७—दंडक पुहुमि पुनीत भई—

कथा है कि एक बार बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। सब ऋषिगण अपने-अपने आश्रमोंको छोड़कर गौतम-ऋषिके आश्रमपर जा ठहरे। पीछे जब दुर्भिक्ष मिट गया तो वे गौतम-ऋषिसे विदा माँगनेके लिये गये। ऋषिने उनको उसी आश्रममें रहनेके लिये कहा तथा अन्यत्र जानेके लिये मना किया। तब उन ऋषियोंने एक मायाकी गौ रचकर गौतम-ऋषिके खेतमें खड़ी कर दी। ऋषि जब उसे हाँकनेके लिये गये तो वह गिर पड़ी और मर गयी। इसपर वे सारे ऋषि उनके ऊपर गोहत्याका दोष मढ़कर जाने लगे। गौतम-ऋषिने योगबलसे जब उनकी इस मायाको जाना तब क्रोधित होकर शाप दे दिया कि तुम जहाँ जाना चाहते हो वह देश अपवित्र—नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। तभीसे वह दण्डकवनके नामसे प्रसिद्ध हुआ और वहाँ कभी कोई लता-वृक्ष नहीं उगते थे, सदा वह प्रदेश वीरान रहता था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरण धरते ही वह उजाड़ प्रदेश पवित्र और हरा-भरा हो गया।